सितंबर, 2021

I.S.S.N. : 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

प्रधान संपादक (प्रभारी)

श्री कमला कान्त

संपादक

श्री कमला कान्त
श्री अविनाश शुक्ला
श्री असलम खान

सहायक संपादक

श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक

श्री महीपाल सिंह
श्री जसवन्त सिंह

ISSN-2457-0478

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

वार्षिक : ₹ 1,300/-

© 2021 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा.................................. द्वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

सितम्बर, 2021 अंक - 9

प्रधान संपादक (प्रभारी)

श्री कमला कान्त

संपादक

असलम खान

(2021) 2 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन

विधायी विभाग

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on Website → https://bharatkosh.gov.in/product/product

---

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001.
दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

जटिल व्यापारिक संबंधों और वैश्वीकरण से आच्छादित संसार में, मुकदमों और विवादों के समाधान के लिए माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के अधीन उपलब्ध माध्यस्थम् के महत्व को कम नहीं समझा जा सकता । माध्यस्थम् विवादों को निपटाने का एक सुव्यवस्थित और कुशल तरीका प्रदान करती है जो पारंपरिक मुकदमेबाजी की तुलना में अधिक कारगर है । माध्यस्थम् का एक प्रमुख गुण इसका लचीलापन है । इसमें पक्षकारों के लिए यह सुविधा है कि वे अपने विवाद के समाधान के लिए मध्यस्थ और स्थान का चयन अपनी विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुरूप कर सकते हैं । इस अनुकूलता से विवादों का निपटान सही तरीके से किया जाना सुनिश्चित होता है । माध्यस्थम् का एकम लाभ समय की बर्बादी से बचना भी है । पारंपरिक न्यायालयिक मुकदमेबाजी, भीड़भाड़ और प्रक्रियात्मक जटिलताओं के कारण वर्षों तक चलती रहती है जबकि माध्यस्थम् की कार्यवाही आमतौर पर तीव्र होती है जिससे पक्षकारों को आगे बढ़ने और समाधान तक पहुंचने में आसानी होती है । यह शीघ्रता वाणिज्यिक मामलों में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जहां देरी के कारण से वित्तीय नुकसान और संबंधों में बिगाड़ पैदा हो सकता है । माध्यस्थम् की कार्यवाही के दौरान दोनों पक्षकारों की गोपनीयता बनी रहती है और वे संवेदनशील व्यावसायिक जानकारी को सुरक्षित रख सकते हैं जबकि सार्वजनिक मुकदमेबाजी से उनकी प्रतिष्ठा की सुरक्षा को खतरा हो सकता है । यह गोपनीयता वाणिज्यिक संस्थाओं को अपने हितों से समझौता करने के डर के बिना समाधान खोजने के लिए प्रोत्साहित करती है । माध्यस्थम् तटस्थता को भी बढ़ावा देती है । सीमा पार विवादों में, पार्टियों का विभिन्न कानूनी प्रणालियों और संस्कृतियों से होना आम बात है । अंतर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् एक तटस्थ मंच प्रदान करती है, जो यह सुनिश्चित करती है कि किसी भी पक्ष को किसी विशेष कानूनी वातावरण से परिचित होने से अनुचित लाभ न हो । यह प्रक्रिया में विश्वास को बढ़ावा देता है और विभिन्न पक्षों को समाधान में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित करता है ।

यह स्वीकार करना भी महत्वपूर्ण है कि माध्यस्थम् की अपनी कुछ चुनौतियां भी हैं । मध्यस्थों का चयन, उच्च लागत की संभावना और अपील के लिए सीमित रास्ते जैसी कुछ चिंताएं हैं जिन पर ध्यान देने की आवश्यकता है । यद्यपि ये चुनौतियां अक्सर माध्यस्थम् द्वारा प्रदान किए जाने वाले फायदों और लाभों से अधिक महत्वपूर्ण होती हैं ।

इस अंक में बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 के अतिरिक्त अन्य ज्ञानवर्धक सामग्री भी है जिसका आप परिशीलन करें और अपने अमूल्य सुझावों से अवगत कराएं । इस अंक में सामाजिक कई महत्वपूर्ण मुद्दों पर प्रकाश डाला गया है । यह अंक विधि-विद्यार्थियों, वकीलों, न्यायाधीशों, विधि-अध्यापकों तथा विधि के ज्ञान में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए पर्याप्त रूप से लाभकारी है ।

असलम खान
संपादक

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

सितंबर, 2021

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
कामिल वजीहुद्दीन सिद्दीकी **बनाम** गुजरात राज्य	374
टेक चंद **बनाम** रतु देवी	426
पी. सिम्हाचलम् **बनाम** यशोदा	338
पीताम्बर जेना **बनाम** ओडिशा राज्य और अन्य	332
रीता **बनाम** अंकित कुमार	297
विवेक सिंह **बनाम** योगेन्द्र सिंह ठाकुर	382
सारिका अक्षय राणाडे **बनाम** अक्षय अरुण राणाडे	399
सुधीर नायक **बनाम** लिली कुमारी नायक	319

संसद् के अधिनियम

बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 19

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66)

– धारा 7 (1), स्पष्टीकरण (ग) – कुटुंब न्यायालय की अधिकारिता – मृतक पुत्री के पिता द्वारा स्त्रीधन वापस लेने की मांग करना – कुटुंब न्यायालय को केवल पति या पत्नी द्वारा फाइल किए गए वाद को सुनने की अधिकारिता है, अतः मृतक पुत्री के पिता द्वारा स्त्रीधन की मांग अधिकारिता रखने वाले सिविल न्यायालय के समक्ष ही की जा सकती है, अन्यथा नहीं ।

विवेक सिंह बनाम **योगेन्द्र सिंह ठाकुर** 382

जन्म और मृत्यु रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1969 (1969 का 18)

– धारा 15 [सपठित गुजरात जन्म और मृत्यु रजिस्ट्रीकरण नियम, 2004 का नियम 11] – जन्म प्रमाणपत्र को ठीक करना – जन्म प्रमाणपत्र में याची के पुत्र का नाम "जिबरील" अभिलिखित किया जाना – धार्मिक गुरु के सुझाव पर नाम "जिबरील" से बदलकर "अरसील" किया जाना – याची द्वारा पुत्र के नाम में जो परिवर्तन किया गया है उसे गुजरात सरकार के राजपत्र में प्रकाशित कराया गया है और साथ ही आधार कार्ड तथा विद्यालय के अभिलेख में भी तद्नुसार ठीक कराया गया है, ऐसी स्थिति में याची जन्म प्रमाणपत्र में अपने पुत्र का नाम ठीक कराने का हकदार है और अपर मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट का आक्षेपित आदेश न्यायोचित नहीं है ।

कामिल वजीहुद्दीन सिद्दीकी बनाम **गुजरात राज्य** 374

पृष्ठ संख्या

मानव अंगों और ऊतकों का प्रतिरोपण अधिनियम, 1994 (1994 का 42)

– धारा 24 [सपठित मानव अंगों का प्रतिरोपण नियम, 1995 का नियम 4क (4)] – वृक्क प्रतिरोपण – याची का वृक्क रोग से ग्रसित पाया जाना – वृक्क प्रतिरोपण की तत्काल आवश्यकता होना – प्रस्तावित दाता का नातेदार न होना – मेडिकल कालेज कटक द्वारा प्रतिरोपण का आवेदन रद्द किया जाना – रद्दकरण के विरुद्ध याचिका – प्रतिरोपण नियम, 1995 का अवलंब लिया जाना – उक्त नियम के अधीन यह उपबंधित है कि मानव अंगों का प्रतिरोपण नियम, 1995 के अधीन प्रदत्त प्रमाण पत्र के खंड 1 में उल्लिखित शब्द "केवल नातेदार के प्रतिरोपण के लिए" रागिस्त्रिकरण रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र से हटा दिए गए हैं, इसलिए गैरनातेदार दाता को भी वृक्क प्रतिरोपण के लिए अनुज्ञात किया जा सकता है ।

पीताम्बर जेना बनाम **ओडिशा राज्य और अन्य** 332

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 105 [सपठित कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19] – अपील – पोषणीयता – अपीलार्थी-पत्नी द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि उसका मामला कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के अंतर्गत आता है, अतः उसे संहिता की धारा 105 का लाभ नहीं दिया जा सकता और निचले न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

सारिका अक्षय राणाडे बनाम **अक्षय अरुण राणाडे** 399

पृष्ठ संख्या

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 13 – विवाह-विच्छेद – असाध्य विवाह-विघटन – पत्नी द्वारा विवाह-विघटन को चुनौती दिया जाना – धारा 13 के अधीन असाध्य विवाह-विघटन जैसा आधार न पाया जाना – कुटुंब न्यायालय विवाह-विच्छेद की डिक्री केवल उन्हीं आधारों पर पारित कर सकता है जिनका उल्लेख धारा 13 के अधीन किया गया है अन्यथा नहीं, अतः निचले न्यायालय द्वारा पारित विवाह-विच्छेद का निर्णय और डिक्री अपास्त किए जाने योग्य है ।

रीता बनाम **अंकित कुमार** 297

– धारा 13(1)(i-क) – विवाह-विच्छेद – मानसिक क्रूरता – यदि पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध गाली-गलौज और कठोर व्यवहार निरंतर किया जाता है तब ऐसे कृत्य को मानसिक क्रूरता की कोटि में रखा जा सकता है ।

पी. सिम्हाचलम् बनाम **यशोदा** 338

– धारा 13(1)(i-क) – विवाह-विच्छेद – मानसिक क्रूरता का मूल्यांकन – पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध पुलिस में शिकायत दर्ज करते हुए व्यभिचार का आरोप लगाया जाना – साक्ष्य का अभाव – पत्नी द्वारा दूसरे पक्षकार पर व्यभिचार का आरोप लगाया जाता है जो साक्ष्य के अभाव में साबित नहीं हो पाया है और पुत्री द्वारा भी आरोप का खण्डन किया जाता है, ऐसी स्थिति में भारतीय समाज की दृष्टि से आरोप लगाने के इस कृत्य को मानसिक क्रूरता की कोटि में रखा जा सकता है ।

पी. सिम्हाचलम् बनाम **यशोदा** 338

पृष्ठ संख्या

– धारा 13(1)(i-ख) – विवाह-विच्छेद – पत्नी द्वारा अभित्यजन किए जाने का अभिकथन – अर्जीदार यह साबित नहीं कर सका कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने अर्जी फाइल किए जाने के तत्काल पूर्व निरंतर दो वर्ष तक बिना किसी कारण पति के प्रति अभित्यजन किया था, अतः इस आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित नहीं की जा सकती और निचले न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

टेक चंद बनाम **रतु देवी** 426

– धारा 3(1)(i-ख) और धारा 9 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 11] – विवाह-विच्छेद कार्यवाही – पूर्वन्याय – पति द्वारा पत्नी के विरुद्ध धारा 9 के अधीन पूर्ववर्ती अर्जी फाइल किया जाना – कुटुम्ब न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया जाना कि पति ने पत्नी के विरुद्ध अभित्यजन किया है, अतः इस आधार पर पति के विरुद्ध पूर्वन्याय का सिद्धांत लागू होगा और उसे पश्चात्वर्ती मामले में विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदत्त नहीं की जा सकती ।

टेक चंद बनाम **रतु देवी** 426

– धारा 13(1)(i-क)(i-ख) – विवाह-विच्छेद – कुटुंब न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित किया जाना – पत्नी द्वारा पति के प्रति क्रूरता और अभित्यजन कारित किए जाने का आरोप सिद्ध न किया जाना – पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध धारा 125 के अधीन भरणपोषण का आवेदन और धारा 498क के अधीन शिकायत फाइल किए जाने से क्रूरता कारित नहीं हो सकती, अतः इन शिकायतों के आधार पर निचले न्यायालय

पृष्ठ संख्या

द्वारा निकाला गया निष्कर्ष न्यायोचित नहीं है ।

रीता बनाम **अंकित कुमार** 297

– धारा 24 और 28 – अपील – पोषणीयता – धारा 24 के अधीन वाद लंबित रहने के दौरान यदि भरणपोषण की खारिजी का आदेश किया जाता है तो उसे धारा 28 के अधीन अपील में चुनौती नहीं दी जा सकती ।

सारिका अक्षय राणाडे बनाम **अक्षय अरुण राणाडे** 399

– धारा 25(2) [सपठित कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 7] – पत्नी द्वारा स्थायी निर्वाहिका का दावा किया जाना – पति और उसके परिजनों द्वारा पत्नी से दहेज को लेकर असंतोष प्रकट किया जाना – अलग रहने के दौरान भी पति द्वारा पत्नी की देख-रेख न किया जाना – पत्नी के साक्ष्य की संपुष्टि उसके पिता के साक्ष्य से होती है और पति यह साबित नहीं कर सका कि उसने वैवाहिक गृह से अलग रहने के दौरान भी पत्नी का भरणपोषण किया था और यह कि उसने पत्नी के साथ मानसिक क्रूरता कारित नहीं की है, अतः अपीलार्थी की आय को दृष्टिगत करते हुए निचले अपील न्यायालय द्वारा तय की गई निर्वाहिका की राशि न्यायोचित है ।

सुधीर नायक बनाम **लिली कुमारी नायक** 319

रीता

बनाम

अंकित कुमार

(2020 की प्रथम अपील सं. 12)

तारीख 5 अगस्त, 2021

न्यायमूर्ति सुनीता अग्रवाल और न्यायमूर्ति साधना रानी (ठाकुर)

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(1)(i-क)(i-ख) – विवाह-विच्छेद – कुटुंब न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित किया जाना – पत्नी द्वारा पति के प्रति क्रूरता और अभित्यजन कारित किए जाने का आरोप साबित न किया जाना – पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध धारा 125 के अधीन भरणपोषण का आवेदन और धारा 498क के अधीन शिकायत फाइल किए जाने से क्रूरता कारित नहीं हो सकती, अतः इन शिकायतों के आधार पर निचले न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष न्यायोचित नहीं है ।

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 – धारा 13 – विवाह-विच्छेद – असाध्य विवाह-विघटन – पत्नी द्वारा विवाह-विघटन को चुनौती दिया जाना – धारा 13 के अधीन असाध्य विवाह-विघटन जैसा आधार न पाया जाना – कुटुंब न्यायालय विवाह-विच्छेद की डिक्री केवल उन्हीं आधारों पर पारित कर सकता है जिनका उल्लेख धारा 13 के अधीन किया गया है अन्यथा नहीं, अतः निचले न्यायालय द्वारा पारित विवाह-विच्छेद का निर्णय और डिक्री अपास्त किए जाने योग्य है ।

इस मामले में प्रत्यर्थी अंकित कुमार ने हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अधीन विवाह-विघटन के लिए प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, बिजनौर के समक्ष तारीख 1 नवंबर, 2017 को अर्जी

फाइल की जिसमें यह प्रतिवाद किया कि पक्षकारों का विवाह तारीख 20 फरवरी, 2011 को हिन्दू रीति-रिवाज के अनुसार बिना किसी दहेज के हुआ था । दोनों पक्षकार हिन्दू हैं और उनके मामले को हिन्दू विवाह अधिनियम लागू होता है । विवाह के पश्चात् श्रीमती रीता प्रत्यर्थी-अंकित कुमार और उसके परिवार के सदस्यों के साथ रहती थी । प्रत्यर्थी ने श्रीमती रीता का भरपूर ध्यान रखा और उसे सभी सुविधाएं उपलब्ध कराईं किंतु विवाह के दो दिन के बाद से ही श्रीमती रीता का व्यवहार बदलने लगा । वह अपने ही कमरे में रहने लगी और अर्जीदार-पति और उसके परिजनों विशेषकर उसकी माता के साथ किसी न किसी बात को लेकर गाली-गलौज करने लगी । वह अपने देवर और भाई के साथ प्रत्यर्थी अंकित कुमार और उसके परिजनों को बताए बिना अपने मायके जाया करती थी और जब उसे पूछा जाता है तब वह खिन्न हो जाया करती थी । जब पत्नी के माता-पिता से शिकायत की गई तो उन्होंने भी रीता का पक्ष लिया और प्रत्यर्थी-पति को दहेज के किसी मिथ्या मामले में आलिप्त करने की धमकी दी । अपीलार्थी अर्थात् वाद में कि प्रत्यर्थी-पत्नी प्रत्यर्थी-पति को यह कहकर अपमानित किया करती थी कि वह अंग्रेजी में एम.ए. पास है और ट्यूशन पढ़ाती है जबकि अंकित कुमार अशिक्षित है । उसने प्रत्यर्थी-पति के साथ इसलिए विवाह किया कि वह उसकी इच्छानुसार उसके नियंत्रण में रहे । अपीलार्थी-पत्नी ने प्रत्यर्थी अंकित कुमार को परिवार से अलग रहने के लिए विवश करना आरंभ कर दिया । अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के विवाह-बंधन के परिणामस्वरूप एक पुत्र ने जन्म लिया जिसका नाम अथर्व है किंतु उसे पिता से दूर रखा गया ताकि प्रत्यर्थी-पति विवाह का सुख प्राप्त न कर सके । प्रत्यर्थी को अपीलार्थी-पत्नी ने कभी भी उसके पुत्र के साथ मिलने-जुलने नहीं दिया । पत्नी ने दहेज प्रतिषेध अधिनियम के अधीन प्रत्यर्थी-पति और उसके परिवार के विरुद्ध मिथ्या शिकायत दर्ज कराई जिसने अंकित कुमार को उन अपराधों के लिए जेल जाना पड़ा जो उन्होंने कभी कारित नहीं किए थे । दहेज वाद के लंबित रहने के दौरान मीडिएशन के माध्यम से प्रत्यर्थी अपीलार्थी को तारीख 16 जुलाई, 2015 को अपने घर ले गया किंतु पत्नी के परिवार के सदस्य इस समझौते से प्रसन्न नहीं थे और

तारीख 20 अगस्त, 2015 को रीता का देवर और भाई अपराह्न लगभग 5.00 बजे प्रत्यर्थी-पति के घर आए और उन्होंने प्रत्यर्थी और उसके परिजनों पर लाठी-डंडे और घूसों से हमला किया और इसके पश्चात् अपीलार्थी रीता और वह उसके बच्चे को अपने साथ ले गए और इसके साथ-साथ वे उनके सभी वस्त्र और आभूषण भी ले गए । प्रत्यर्थी-पति के क्षतिग्रस्त होने के कारण उसकी चिकित्सा परीक्षा कराई गई । इस घटना के संबंध में प्रत्यर्थी-पति ने एक शिकायत भी दर्ज कराई । अब पक्षकार तारीख 20 अगस्त, 2015 से अलग-अलग रह रहे हैं । उस समय से दोनों के अब कोई भी शरीरिक संबंध नहीं है । पत्नी ने भी दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 के अधीन वाद फाइल किया है जिसमें उसने प्रत्यर्थी-पति के साथ रहने से पूर्णतया इनकार किया है । पत्नी द्वारा कारित की गई शारीरिक और मानसिक क्रूरता के कारण प्रत्यर्थी-पति के लिए यह संभव नहीं था कि वह अपीलार्थी के साथ रह सके । प्रत्यर्थी-पति को अपीलार्थी-पत्नी के नातेदारों की ओर से जान से मारने की धमकी दी गई है । यह भी दलील दी गई है कि अपीलार्थी-पत्नी के व्यवहार में सुधार की कोई आशा नहीं है और एकमात्र हल उनका विवाह-विच्छेद ही है । अपीलार्थी-पत्नी द्वारा लिखित कथन फाइल किया गया जिसमें उसने सभी अभिकथनों से इनकार करते हुए यह अभिवाक् किया है कि विवाह के पश्चात् उसने अपने सभी वैवाहिक कर्तव्यों का निर्वहन पूरी निष्ठा के साथ किया किंतु विवाह के बाद से ही प्रत्यर्थी-पति और उसके परिजनों ने उसे तंग करने लगे और उन्होंने दहेज के रूप में एक कार और एक लाख रुपए की मांग की । अपीलार्थी-पत्नी घर का पूरा कामकाज करती थी और ससुराल वालों और पति द्वारा जो उसका अपमान किया जाता था वह अपने वैवाहिक गृह तथा परिवार की मर्यादा को बनाए रखने के लिए सहन करती थी । वह घर में मवेशियों का भी ध्यान रखती थी । एक बार ससुराल वालों की मांग पूरी करने के लिए वह अपने माता-पिता से 50 हजार रुपए भी लेकर आई किंतु ससुराल वालों की दहेज की निरंतर मांग के कारण उसके साथ मारपीट की गई और उसे तारीख 15 मई, 2015 को उसकी ससुराल से निकाल दिया गया । इसके पश्चात् उसने अपनी चिकित्सा परीक्षा कराई और दहेज

प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 के साथ पठित भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क, 323, 504 और 506 के अधीन पुलिस थाना, मडावर में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 21/2015 दर्ज कराई गई जिसके पश्चात् पुलिस द्‌वारा आरोप पत्र सं. 28/2015 प्रस्तुत किया गया । अपीलार्थी-पत्नी ने इस बात से इनकार किया कि वह कभी प्रत्यर्थी-पति को बताए बिना अपने भाई या देवर के साथ गई थी । पत्नी ने यह कथन किया कि वह अपने पति के साथ रहने के लिए सदैव तैयार रहती थी जबकि उसके पति ने जानबूझकर उसका अभित्यजन किया था ताकि पत्नी उसकी एक लाख रुपए और सेंट्रो कार की विधि विरुद्ध मांग पूरी कर सके । प्रत्यर्थी-पति दहेज पाने के लिए दूसरा विवाह करना चाहता था और इसीलिए वह विवाह-विच्छेद कराना चाहता था । पति को अपनी पत्नी या पुत्र से कोई भी प्रेम और स्नेह नहीं था । उसने कभी भी अपने पुत्र का हाल जानने की आवश्यकता महसूस नहीं की । तारीख 16 जुलाई, 2015 को भी मीडिएशन के पश्चात् वह अपने पति के साथ इच्छापूर्वक चली गई जबकि प्रत्यर्थी और उसके परिजन दहेज की मांग पर अटल थे । उसके भाई और उसके देवर को इस पर कोई आपत्ति नहीं थी कि अपीलार्थी प्रत्यर्थी के साथ रहे । किंतु तारीख 20 अगस्त, 2015 को अपराह्न लगभग 4.00 बजे उसके पति और उसके परिजनों द्‌वारा उसके साथ लात-घूंसों और डंडों से मारपीट की गई । उसे ग्रामवासियों द्‌वारा बचाया गया जिन्होंने अपीलार्थी के भाई को सूचना दी । इसके पश्चात् अपीलार्थी के भाई भोपाल सिंह उसे अपने साथ ले गया और उसकी चिकित्सा परीक्षा कराई और इसके पश्चात् पुलिस थाना, किरतपुर में दंड संहिता की धारा 323, 504 और 506 के अधीन एन.सी.आर. सं. 66/15 दर्ज कराई । इस मामले से संबंधित कार्यवाही अभी भी लंबित है । अपीलार्थी ने कभी भी अपने पति को तंग नहीं किया बल्कि वह स्वयं अपीलार्थी के साथ अपनी क्रियाओं और निष्क्रियाओं से मानसिक और शारीरिक क्रूरता कारित कर रहा था । प्रत्यर्थी-पति ने उसे दो बार वैवाहिक गृह से बाहर निकाला था और उसके अपने पुत्र के साथ अपने माता-पिता के यहां रहना पड़ा जबकि वह सदैव अपने पति के साथ रहना चाहती थी । अपर प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब

न्यायालय, बिजनौर ने अपने तारीख 30 नवंबर, 2019 के निर्णय और आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी-पति ने अपनी अर्जी में संदेह के परे अभिकथन साबित किए और न्यायाधीश ने विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित कर दी । पत्नी को दो लाख रुपए की एकमुश्त राशि की निर्वाहिका के रूप में डिक्रीत की गई है । इस आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी पत्नी ने प्रथम अपील फाइल की । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – पति के उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसने कभी भी अपने पुत्र से स्वयं या न्यायालय के माध्यम से अन्य किसी उच्चतर प्राधिकारी के माध्यम से मिलने का प्रयास नहीं किया और न ही उसने अपने पुत्र को अपनी अभिरक्षा में लेने के लिए कोई वाद फाइल किया । इसके अतिरिक्त, उसने कुटुंब न्यायालय द्वारा पत्नी और पुत्र को हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 24 के अधीन अधिनिर्णीत 2,00,000/- रुपए की एकमुश्त निर्वाहिका का संदाय नहीं किया और न ही उसने अंतिरम भरणपोषण के लिए कोई भुगतान किया । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन आवेदन के संबंध में उसने केवल 1,20,000/- रुपए का संदाय उस समय किया जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 128 के अधीन आवेदन पत्नी की ओर से फाइल किया गया था । पति ने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए भी कोई वाद फाइल नहीं किया है । पति ने अभि. सा. 1 के रूप में साक्ष्य दिया है जिसमें उसने यह कथन किया है कि यदि उसकी पत्नी उसके साथ जाने और वैवाहिक जीवन बिताने के लिए तैयार थी तब भी वह उसे अपने साथ ले जाना नहीं चाहता था, अपीलार्थी पत्नी ने यह कथन किया है कि वह अभी भी अपने पति के साथ रहना चाहती थी । पत्नी का सद्भावपूर्ण आशय से इस तथ्य से सिद्ध होता है कि तारीख 16 जुलाई, 2015 को मीडिएशन के पश्चात् वह अपने पति के साथ गई थी और उसके साथ 20 अगस्त, 2015 तक रही थी जिसके पश्चात् उसे उसका भाई और जीजा अभिकथित रूप से वहां से ले गए थे । स्वीकृतत:, तारीख 20 अगस्त, 2015 को दंड संहिता की धारा 498-क, 323, 504 और 506 तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 के अधीन चल रहे मामले की सुनवाई थी और न्यायालय में उनकी उपस्थिति दर्ज

किए जाने और पुन: साथ-साथ जाने की इच्छा व्यक्त करने के पश्चात् दोनों पक्षकार प्रत्यर्थी-पति के घर के लिए रवाना हुए । यदि पत्नी-पति के साथ रहना नहीं चाहती थी, तब पत्नी तारीख 20 अगस्त, 2015 को अपने पति के घर जाने के लिए बाध्य नहीं थी । यह भी उल्लेखनीय है कि तारीख 20 अगस्त, 2015 की घटना के संबंध में अपीलार्थी के भाई के द्वारा एक एन.सी.आर. दर्ज कराई गई और प्रत्यर्थी-पति के संबंध में यह कहा गया है कि उसने न्यायालय में शिकायत फाइल की है । पत्नी की ओर से यह अभिकथन किया गया है कि जब दहेज मामले का निपटारा न्यायालय द्वारा नहीं किया गया था, तब तारीख 20 अगस्त, 2015 को न्यायालय से वापस आने के पश्चात् पति द्वारा पत्नी के साथ मारपीट की गई थी और इस घटना में पत्नी क्षतिग्रस्त हो गई थी । पड़ोसी उसे बचाने आए थे और पड़ोसियों द्वारा सूचना दिए जाने पर उसका भाई वहां आया और अपीलार्थी-पत्नी को उसके पुत्र के साथ ले गया । इसके पश्चात् पुलिस द्वारा अपीलार्थी की चिकित्सा परीक्षा कराई गई और अपीलार्थी के भाई द्वारा एन. सी. आर. दर्ज कराई गई । स्वीकृतत:, तारीख 20 अगस्त, 2015 की घटना और पत्नी द्वारा फाइल की गई दहेज संबंधी शिकायत दोनों ही न्यायाधीन हैं । इस प्रकार विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा निर्णय के पृष्ठ 17 पर निकाला गया यह निष्कर्ष निराधार हो जाता है कि पति के विरुद्ध आपराधिक मामले में फाइल किया जाना और पति के साथ रहने से इनकार करना पत्नी द्वारा पति के प्रति क्रूरता कारित किए जाने की कोटि में आता है । इसके अतिरिक्त जब पत्नी और बच्चे को पति/पिता से दूर रहने के लिए विवश किया गया है तब ऐसी स्थिति में उन्हें पति/पिता से भरणपोषण की मांग करने का अधिकार है और यदि पत्नी को पति या सास-श्वसुर द्वारा दहेज या अन्यथा के लिए तंग किया जा रहा है, तब ऐसी पत्नी को विधि के अधीन संरक्षण पाने का अधिकार है । इस प्रकार, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 और दंड संहिता की धारा 498-ख, 323, 504 और 506 तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 के अधीन फाइल की गई मात्र इस कार्यवाही को पति के विरुद्ध पत्नी द्वारा क्रूरता कारित किया जाना नहीं माना जा सकता । (पैरा 19, 20, 21 और 22)

जहां तक पति की ओर से किए गए इन अभिकथनों का संबंध है कि अपीलार्थी अपने माता-पिता से अलग रहने के लिए पति पर दबाव डाला करती थी, ये अभिकथन स्वयं ही मिथ्या साबित हो जाते हैं क्योंकि प्रत्यर्थी के पिता ने अपने अभिसाक्ष्य में यह कथन किया है कि वह और उसकी पत्नी एक ही ग्राम में अलग-अलग रहते थे और उनका खान-पान तथा रहन-सहन अलग-अलग था । विवाह-विच्छेद के पक्षकारों के साथ-साथ उनका कोई संबंध नहीं था । उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक ओर विद्‌वान् कुटुंब न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में क्रूरता से संबंधित कोई भी निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया है और मात्र लंबित आपराधिक मामलों के आधार पर अविधिमान्य रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि अपीलार्थी अपने पति के प्रति क्रूरता कारित किए जाने की दोषी है और दूसरी ओर न्यायालय ने अभित्यजन के आधार पर भी कोई निष्कर्ष नहीं निकाला है । हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 का परिशीलन करने पर हमारा यह निष्कर्ष है कि ऐसा कोई आधार नहीं है जिसे "असाध्य विवाह-विघटन" कहा जा सके और इस प्रकार कुटुंब न्यायालय इस अधिनियम की धारा में उल्लिखित आधारों के सिवाय किसी आधार के अन्तर्गत विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान नहीं कर सकता । कुटुंब न्यायालय ने विवाह के असाध्य विघटन के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान करके गलत किया है क्योंकि क्रूरता और अभित्यजन जैसे दोनों आधार विवाह-विच्छेद की ईप्सा के लिए अर्जीदार पति द्‌वारा साबित नहीं किए गए हैं । (पैरा 23, 24, 26 और 33)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2015]	(2015) 112 ए. एल. आर. 382 = ए. आई. आर. 2016 (एन. ओ. सी.) 169 (इलाहाबाद) : **सतेन्द्र कुमार गुप्ता** बनाम **श्रीमती कंचन गुप्ता और अन्य** ;	25
[2013]	ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 2176 : **के. श्रीनिवास** बनाम **डी. ए. दीपा** ;	25

[2013]	(2013) 4 ए. डब्ल्यू. सी. 3292 = ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 2916 : **अशोक कुमार जैन** बनाम **सुभती जैन** ;	25
[2013]	(2013) 5 एस. सी. सी. 226 = ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 2176 : **के. श्रीनिवास राव** बनाम **डी. ए. दीपा** ;	25, 28
[2013]	(2013) 9 एस. सी. सी. 1 = ए. आई. आर. 2013 एस. सी. (सप्ली.) 85 : **दर्शन गुप्ता** बनाम **राधिका गुप्ता** ;	29
[2010]	2010 (81) ए. एल. आर. 771 = ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 193 : **नीलम कुमार** बनाम **दयारानी** ;	25
[2010]	(2010) 14 एस. सी. सी. 301 = ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 114 : **गुरबक्श सिंह** बनाम **हरमिन्दर कौर** ;	31
[2009]	(2009) 6 एस. सी. सी. 379 = ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 2254 : **विष्णु दत्त शर्मा** बनाम **मंजू शर्मा** ;	30
[2007]	(2007) 2 एस. सी. सी. 263 = ए. आई. आर. ऑनलाइन 2006 एस. सी. 507 : **ऋषिकेश शर्मा** बनाम **सरोज शर्मा** ;	27
[2007]	(2007) 2 एस. सी. सी. 263 = ए. आई. आर. ऑनलाइन 2006 एस. सी. 507 : **दुर्गा प्रसन्न त्रिपाठी** बनाम **अरुंधति त्रिपाठी, शर्मा/सरोज शर्मा** ;	25
[2003]	ए. आई. आर. 2003 इलाहाबाद 51 : **पूनम गुप्ता** बनाम **घनश्याम गुप्ता** ।	25

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2020 की प्रथम अपील सं. 12.

2017 की वैवाहिक अर्जी सं. 1026 में अपर प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, बिजनौर द्वारा तारीख 30 नवंबर, 2019 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री अनुराग शर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से श्री राजेन्द्र प्रसाद तिवारी और श्री अरविन्द कुमार मिश्रा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति साधना रानी (ठाकुर) ने दिया ।

न्या. रानी (ठाकुर) – यह प्रथम अपील हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 13 के अधीन 2017 की वैवाहिक अर्जी सं. 1026 में अपर प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, बिजनौर द्वारा तारीख 30 नवंबर, 2019 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके अनुसार अंकित कुमार (वाद में का प्रत्यर्थी) की ओर से विवाह-विच्छेद के लिए फाइल किए गए वाद में डिक्री पारित की गई और तारीख 20 फरवरी, 2011 को अनुष्ठापित श्रीमती रीता और अंकित कुमार का विवाह विघटित कर दिया गया है ।

2. मामले के तथ्यों के अनुसार प्रत्यर्थी अंकित कुमार ने हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अधीन विवाह-विघटन के लिए प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, बिजनौर के समक्ष तारीख 1 नवंबर, 2017 को अर्जी फाइल की जिसमें यह प्रतिवाद किया कि पक्षकारों का विवाह तारीख 20 फरवरी, 2011 को हिन्दू रीति-रिवाज के अनुसार बिना किसी दहेज के हुआ था । दोनों पक्षकार हिन्दू हैं और उनके मामले को हिन्दू विवाह अधिनियम लागू होता है ।

3. विवाह के पश्चात् श्रीमती रीता प्रत्यर्थी-अंकित कुमार और उसके परिवार के सदस्यों के साथ रहती थी । प्रत्यर्थी ने श्रीमती रीता का भरपूर ध्यान रखा और उसे सभी सुविधाएं उपलब्ध कराईं किंतु विवाह के दो दिन के बाद से ही श्रीमती रीता का व्यवहार बदलने लगा । वह अपने

ही कमरे में रहने लगी और अर्जीदार-पति और उसके परिजनों विशेषकर उसकी माता के साथ किसी न किसी बात को लेकर गाली-गलौज करने लगी । वह अपने देवर और भाई के साथ प्रत्यर्थी अंकित कुमार और उसके परिजनों को बताए बिना अपने मायके जाया करती थी और जब उसे पूछा जाता है तब वह खिन्न हो जाया करती थी । जब पत्नी के माता-पिता से शिकायत की गई तो उन्होंने भी रीता का पक्ष लिया और प्रत्यर्थी-पति को दहेज के किसी मिथ्या मामले में आलिप्त करने की धमकी दी । अपीलार्थी अर्थात् वाद में कि प्रत्यर्थी-पत्नी प्रत्यर्थी-पति को यह कहकर अपमानित किया करती थी कि वह अंग्रेजी में एम.ए. पास है और ट्यूशन पढ़ाती है जबकि अंकित कुमार अशिक्षित है । उसने प्रत्यर्थी-पति के साथ इसलिए विवाह किया कि वह उसकी इच्छानुसार उसके नियंत्रण में रहे । अपीलार्थी-पत्नी ने प्रत्यर्थी अंकित कुमार को परिवार से अलग रहने के लिए विवश करना आरंभ कर दिया । अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के विवाह-बंधन के परिणामस्वरूप एक पुत्र ने जन्म लिया जिसका नाम अथर्व है किंतु उसे पिता से दूर रखा गया ताकि प्रत्यर्थी-पति विवाह का सुख प्राप्त न कर सके । प्रत्यर्थी को अपीलार्थी-पत्नी ने कभी भी उसके पुत्र के साथ मिलने-जुलने नहीं दिया । पत्नी ने दहेज प्रतिषेध अधिनियम के अधीन प्रत्यर्थी-पति और उसके परिवार के विरुद्ध मिथ्या शिकायत दर्ज कराई जिसने अंकित कुमार को उन अपराधों के लिए जेल जाना पड़ा जो उन्होंने कभी कारित नहीं किए थे । दहेज वाद के लंबित रहने के दौरान मीडिएशन के माध्यम से प्रत्यर्थी अपीलार्थी को तारीख 16 जुलाई, 2015 को अपने घर ले गया किंतु पत्नी के परिवार के सदस्य इस समझौते से प्रसन्न नहीं थे और तारीख 20 अगस्त, 2015 को रीता का देवर और भाई अपराह्न लगभग 5.00 बजे प्रत्यर्थी-पति के घर आए और उन्होंने प्रत्यर्थी और उसके परिजनों पर लाठी-डंडे और घूसों से हमला किया और इसके पश्चात् अपीलार्थी रीता और वह उसके बच्चे को अपने साथ ले गए और इसके साथ-साथ वे उनके सभी वस्त्र और आभूषण भी ले गए । प्रत्यर्थी-पति के क्षतिग्रस्त होने के कारण उसकी चिकित्सा परीक्षा कराई गई । इस घटना के संबंध में प्रत्यर्थी-पति ने एक शिकायत भी दर्ज कराई । अब पक्षकार तारीख 20

अगस्त, 2015 से अलग-अलग रह रहे हैं । उस समय से दोनों के अब कोई भी शरीरिक संबंध नहीं है । पत्नी ने भी दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 के अधीन वाद फाइल किया है जिसमें उसने प्रत्यर्थी-पति के साथ रहने से पूर्णतया इनकार किया है ।

4. पत्नी द्वारा कारित की गई शारीरिक और मानसिक क्रूरता के कारण प्रत्यर्थी-पति के यह संभव नहीं था कि वह अपीलार्थी के साथ रह सके । प्रत्यर्थी-पति को अपीलार्थी-पत्नी के नातेदारों की ओर से जान से मारने की धमकी दी गई है । यह भी दलील दी गई है कि अपीलार्थी-पत्नी के व्यवहार में सुधार की कोई आशा नहीं है और एकमात्र हल उनका विवाह-विच्छेद ही है ।

5. अपीलार्थी-पत्नी द्वारा लिखित कथन फाइल किया गया जिसमें उसने सभी अभिकथनों से इनकार करते हुए यह अभिवाक् किया है कि विवाह के पश्चात् उसने अपने सभी वैवाहिक कर्तव्यों का निर्वहन पूरी निष्ठा के साथ किया किंतु विवाह के बाद से ही प्रत्यर्थी-पति और उसके परिजनों ने उसे तंग करने लगे और उन्होंने दहेज के रूप में एक कार और एक लाख रुपए की मांग की । अपीलार्थी-पत्नी घर का पूरा कामकाज करती थी और ससुराल वालों और पति द्वारा जो उसका अपमान किया जाता था वह अपने वैवाहिक गृह तथा परिवार की मर्यादा को बनाए रखने के लिए सहन करती थी । वह घर में मवेशियों का भी ध्यान रखती थी । एक बार ससुराल वालों की मांग पूरी करने के लिए वह अपने माता-पिता से 50 हजार रुपए भी लेकर आई किंतु ससुराल वालों की दहेज की निरंतर मांग के कारण उसके साथ मारपीट की गई और उसे तारीख 15 मई, 2015 को उसकी ससुराल से निकाल दिया गया । इसके पश्चात् उसने अपनी चिकित्सा परीक्षा कराई और दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 के साथ पठित भारतीय दंड संहिता की धारा 498-क, 323, 504 और 506 के अधीन पुलिस थाना, मडावर में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 21/2015 दर्ज कराई गई जिसके पश्चात् पुलिस द्वारा आरोप पत्र सं. 28/2015 प्रस्तुत किया गया । अपीलार्थी-पत्नी ने इस बात से इनकार किया कि वह कभी प्रत्यर्थी-पति को बताए बिना अपने भाई या देवर के साथ गई थी । पत्नी ने यह

कथन किया कि वह अपने पति के साथ रहने के लिए सदैव तैयार रहती थी जबकि उसके पति ने जानबूझकर उसका अभित्यजन किया था ताकि पत्नी उसकी एक लाख रुपए और सेंट्रो कार की विधि विरुद्ध मांग पूरी कर सके । प्रत्यर्थी-पति दहेज पाने के लिए दूसरा विवाह करना चाहता था और इसीलिए वह विवाह-विच्छेद कराना चाहता था । पति को अपनी पत्नी या पुत्र से कोई भी प्रेम और स्नेह नहीं था । उसने कभी भी अपने पुत्र का हाल जानने की आवश्यकता महसूस नहीं की । तारीख 16 जुलाई, 2015 को भी मीडिएशन के पश्चात् वह अपने पति के साथ इच्छापूर्वक चली गई जबकि प्रत्यर्थी और उसके परिजन दहेज की मांग पर अटल थे । उसके भाई और उसके देवर को इस पर कोई आपत्ति नहीं थी कि अपीलार्थी प्रत्यर्थी के साथ रहे । किंतु तारीख 20 अगस्त, 2015 को अपराह्न लगभग 4.00 बजे उसके पति और उसके परिजनों द्‌वारा उसके साथ लात-घूंसों और डंडों से मारपीट की गई । उसे ग्रामवासियों द्‌वारा बचाया गया जिन्होंने अपीलार्थी के भाई को सूचना दी । इसके पश्चात् अपीलार्थी के भाई भोपाल सिंह उसे अपने साथ ले गया और उसकी चिकित्सा परीक्षा कराई और इसके पश्चात् पुलिस थाना, किरतपुर में दंड संहिता की धारा 323, 504 और 506 के अधीन एन.सी.आर. सं. 66/15 दर्ज कराई । इस मामले से संबंधित कार्यवाही अभी भी लंबित है । अपीलार्थी ने कभी भी अपने पति को तंग नहीं किया बल्कि वह स्वयं अपीलार्थी के साथ अपनी क्रियाओं और निष्क्रियाओं से मानसिक और शारीरिक क्रूरता कारित कर रहा था । प्रत्यर्थी-पति ने उसे दो बार वैवाहिक गृह से बाहर निकाला था और उसके अपने पुत्र के साथ अपने माता-पिता के यहां रहना पड़ा जबकि वह सदैव अपने पति के साथ रहना चाहती थी ।

6. अपर प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, बिजनौर ने अपने तारीख 30 नवंबर, 2019 के निर्णय और आदेश द्‌वारा यह अभिनिर्धारित किया कि प्रत्यर्थी-पति ने अपनी अर्जी में संदेह के परे अभिकथन साबित किए और न्यायाधीश ने विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित कर दी । पत्नी को दो लाख रुपए की एकमुश्त राशि की निर्वाहिका के रूप में डिक्रीत की गई है ।

7. इस अपील में पारित तारीख 7 जनवरी, 2020 के आदेश द्वारा प्रत्यर्थी-पति को पुनर्विवाह करने से रोका गया है ।

8. अपीलार्थी-पत्नी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री अनुराग शर्मा और प्रत्यर्थी-पति की ओर से हाजिर होने वाले वाले विद्वान् काउंसेल श्री राजेन्द्र प्रसाद तिवारी को सुना गया है और अभिलेख का परिशीलन किया गया है ।

9. अपीलार्थी के काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि कुटुंब न्यायालय ने असुधार्य विवाह-विच्छेद के आधार पर डिक्री पारित की है जबकि हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद के लिए ऐसा कोई आधार नहीं है और न ही प्रत्यर्थी-पति द्वारा फाइल की गई अर्जी ऐसा आधार लिया जा सकता है । प्रत्यर्थी-पति ने अपनी अर्जी में क्रूरता और अभित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद की प्रार्थना की है किंतु कुटुंब न्यायालय ने इस पर कोई निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया है और अविधिवत् रूप से यह राय व्यक्त की है कि प्रत्यर्थी-पति के विरुद्ध फाइल कराए जाने से ही यह साबित हो जाता है कि अपीलार्थी-पत्नी द्वारा क्रूरता कारित की गई है । न्यायालय द्वारा अपनाया गया यह दृष्टिकोण उचित नहीं है । प्रत्यर्थी-पति विवाह-विच्छेद अर्जी में किए गए अभिकथनों को कुटुंब न्यायालय के समक्ष साक्ष्य प्रस्तुत करके साबित करने में पूरी तरह असफल रहा है । अतः यह अपील मंजूर किए जाने योग्य है ।

10. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि कुटुंब न्यायालय ने क्रूरता से संबंधित निष्कर्ष ठीक ही निकाला है और यह निष्कर्ष भी ठीक है कि पक्षकारों के बीच विवाह-बंधन का टूटना असुधार्य है, अतः कुटुंब न्यायालय का निर्णय कायम रखे जाने योग्य है ।

11. अभिवाक् से यह स्पष्ट हो जाता है कि पक्षकारों के बीच तारीख 20 फरवरी, 2011 को अनुष्ठापित विवाह, विवाह-बंधन से तारीख 6 दिसंबर, 2011 को बच्चे का जन्म होना और तारीख 20 अगस्त, 2015 से पक्षकारों का अलग-अलग रहना ऐसे तथ्य हैं जिन्हें दोनों पक्षकारों द्वारा स्वीकार किया गया है । यह भी स्वीकृत है कि

मीडिएशन के पश्चात् वे तारीख 16 जुलाई, 2015 से 20 अगस्त, 2015 तक साथ-साथ रहे थे और इसके बाद से वे अलग-अलग रह रहे हैं और परिणामस्वरूप उनके बीच कोई भी शारीरिक संबंध नहीं है ।

12. विवाह-विच्छेद की अर्जी प्रत्यर्थी-पति अंकित कुमार द्वारा तारीख 1 नवंबर, 2017 को कुटुंब न्यायालय, बिजनौर के समक्ष फाइल की गई और क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की ईप्सा की गई थी जो कि हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(i-क) के अनुसार विवाह-विच्छेद का एक कानूनी आधार है ।

13. वादपत्र में पत्नी द्वारा इस संबंध में एक शब्द भी नहीं लिखा गया है कि पत्नी द्वारा शारीरिक क्रूरता कारित की गई है । अपीलार्थी-पत्नी के विरुद्ध लगाए गए सभी आरोप मानसिक क्रूरता से संबंधित हैं जो प्रत्यर्थी-पति को साबित करने थे । प्रत्यर्थी-पति के विद्वान् काउंसेल ने लिखित कथन के पैरा 5 में यह उल्लेख किया है कि अपीलार्थी-पत्नी अपने सास-श्वसुर के लिए "गुंडे-बदमाश" जैसे अभ्रद शब्दों का प्रयोग करती थी । उक्त कथन का उल्लेख अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए लिखित-कथन में किया गया है जो अपीलार्थी-पत्नी के वकील द्वारा तैयार किया गया था । लिखित कथन में प्रयोग किए गए शब्दों को विवाह-विच्छेद का आधार नहीं माना जा सकता । इसका यह कारण है कि विवाह-विच्छेद के आधार वादपत्र में ही दिए जाने चाहिएं और विवाह-विच्छेद की अर्जी फाइल करते समय उपलब्ध होने चाहिएं ।

14. पति द्वारा अर्जी में किए गए अभिकथन सामान्य प्रकृति के हैं । अर्जी में किसी भी विशिष्ट तारीख या घटना का वर्णन नहीं किया गया है और न ही प्रत्यर्थी या उसकी ओर से साक्षियों के साक्ष्य में ऐसा कोई उल्लेख है । अर्जी में किए गए ये सभी कथन सामान्य प्रकृति के हैं कि अपीलार्थी, प्रत्यर्थी और उसके परिजनों के साथ झगड़ा किया करती थी और स्वयं को कमरे में परिरुद्ध कर लिया करती थी और उसके परिजनों के साथ बातचीत नहीं करती थी । आगे यह अभिकथन किया गया है कि अपीलार्थी अपनी सास से झगड़ा और गाली-गलौज किया करती थी । अभद्र भाषा के रूप में किन शब्दों का प्रयोग किया जाता था । उनका

उल्लेख अर्जी में कहीं भी नहीं किया गया है और न ही प्रत्यर्थी या उसके साक्षियों के साक्ष्य में किया गया है । इसके अतिरिक्त प्रत्यर्थी के पिता (अभि. सा. 2) में अपने मौखिक साक्ष्य में यह उल्लेख किया है कि वह रीता और अंकित अर्थात् दोनों पक्षकारों से अलग रहता था । यद्यपि वे एक ही ग्राम में रहते थे किंतु उनके मकान अलग-अलग थे । उनका खाना-पीना भी अलग था और उनके बीच खाने-पीने और रहन-सहन को लेकर कोई भी वाद नहीं था । अर्जी में या अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है कि प्रत्यर्थियों के माता-पिता के अतिरिक्त उस ग्राम में उनके परिवार का अन्य कोई सदस्य भी रहता था । इसलिए यदि प्रत्यर्थी के पिता अर्थात् धर्मवीर सिंह के साक्ष्य को सही मान लिया गया है तब प्रत्यर्थी-पति द्वारा लगाए गए ये आरोप मिथ्या हो जाते हैं कि अपीलार्थी-पत्नी उसके परिजनों से ठीक प्रकार बात नहीं करती थी और उनके साथ नहीं बैठती थी और यह कि उनके साथ विशेषकर प्रत्यर्थी की माता के साथ किसी न किसी बात को लेकर झगड़ा और गाली-गलौज किया करती थी ।

15. जहां तक पत्नी द्वारा अपने भाई और जीजा के साथ पति या सास-श्वसुर को बताए बिना वैवाहिक गृह का अभित्यजन किए जाने का संबंध है, अर्जी में जीजा के नाम का उल्लेख नहीं किया गया है और न ही अर्जीदार या उसकी ओर से प्रस्तुत साक्षियों के कथन में कोई उल्लेख है । यद्यपि अभि. सा. 2 द्वारा पृष्ठ 5 पर मौखिक साक्ष्य में यह स्वीकार किया गया है कि अपीलार्थी के तीन जीजा हैं जो क्रमश: ग्राम-तीतरबाना, ग्राम-धर्मपुर और ग्राम-खोजतापुर में रहते हैं ।

16. इसके अतिरिक्त यदि हम अभि. सा. 3 जो अर्जीदार पति का नातेदार है, के साक्ष्य का परिशीलन करें तो पता चलता है कि अनुश्रुत साक्ष्य है । अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान श्रीमती रीता के दुर्व्यवहार के संबंध में इस साक्षी ने यह कथन किया है कि उक्त सूचना उसे फूलसिंह द्वारा दी गई थी । पृष्ठ 4 पर इस साक्षी ने यह कथन किया है कि अंकित कुमार उससे यह कहा करता था कि रीता अपने सास-श्वसुर को बिना बताए अपना वैवाहिक गृह छोड़कर चली जाया करती थी । रीता के

दुर्व्यवहार के संबंध में उसे रीता की सास से पता चला था । यद्यपि इस साक्षी ने यह कथन किया है कि रीता द्वारा अपने पति को "अशिक्षित" पुकारने की घटना उसके सामने पुन: घटित हुई थी, यह अत्यंत सामान्य अभिकथन है कि जिसके संबंध में साक्षी द्वारा किसी भी विशिष्ट तारीख का उल्लेख नहीं किया गया है । इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि अभि. सा. 3 ने केवल अनुश्रुत साक्ष्य ही प्रस्तुत किया है । यह विश्वास किए जाने योग्य नहीं है ।

17. जहां तक पति का अपमान किए जाने के अभिकथनों अर्थात् उसे कम पढ़ा-लिखा कहे जाने का संबंध है, अभि. सा. 1 की प्रतिपरीक्षा के दौरान यह स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि जब पत्नी मीडिएशन के पश्चात् सहर्ष अपने पति के साथ वापस आई तब पति ने पत्नी द्वारा की गई क्रूरता को भुला दिया और उसके द्वारा किए गए सभी दुर्व्यवहारों को माफ कर दिया था । अत: यदि प्रत्यर्थी-पति ने अपने पत्नी के क्रूरतापूर्ण व्यवहार को 20 अगस्त, 2015 के पूर्व माफ कर दिया था तब इस बात का कोई कारण नहीं रह जाता है कि 20 अगस्त, 2015 के पश्चात् वह कोई अर्जी फाइल करता वह भी क्रूरता के आधार पर 20 अगस्त, 2015 की घटना के संबंध में यह प्रकथन किया गया है कि तारीख 20 अगस्त, 2015 को प्रत्यर्थी-पति के घर पर चार व्यक्ति आए थे । उन्होंने उस पर हमला किया और उसे क्षतिग्रस्त किया और इसके पश्चात् वे अपीलार्थी-पत्नी को पुत्र, वस्त्रों और आभूषणों के साथ ले गए । इस संबंध में तनिक भी ऐसा कोई साक्ष्य या अभिवाक् नहीं है कि अपीलार्थी ने भी अपने पति और सास-श्वसुर पर हमला किया था । अत: पत्नी को क्षमा कर देने के पश्चात् स्वीकृत रूप से 20 अगस्त, 2015 के बाद पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध मानसिक या शारीरिक क्रूरता को लेकर कोई कृत्य नहीं किया गया ।

18. जहां तक पति द्वारा किए गए इस अभिकथन का संबंध है कि पत्नी ने उसका अभित्यजन किया है, इस पर पत्नी का प्रति आरोप यह है कि पति ने दहेज की मांग करते हुए उसे उसके वैवाहिक गृह से निकाल लिया था । यह स्वीकृत तथ्य है कि पत्नी द्वारा की गई दहेज की शिकायत और तारीख 20 अगस्त, 2015 की घटना से संबंधित

शिकायत दोनों पक्षकारों द्वारा अर्थात् एक ओर पति द्वारा और दूसरी ओर पत्नी के भाई द्वारा की गई जो अभी तक लंबित हैं । दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 के अधीन फाइल की गई कार्यवाही गुणता के आधार पर विनिश्चित की गई है । प्रत्यर्थी-पति का प्रकथन, जो उसने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान किया है, निम्न प्रकार है :–

(प्रकाशक द्वारा मूल कथन का लोप किया गया है)

19. पति के उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसने कभी-भी अपने पुत्र से स्वयं या न्यायालय के माध्यम से अन्य किसी उच्चतर प्राधिकारी के माध्यम से मिलने का प्रयास नहीं किया और न ही उसने अपने पुत्र को अपनी अभिरक्षा में लेने के लिए कोई वाद फाइल किया । इसके अतिरिक्त, उसने कुटुंब न्यायालय द्वारा पत्नी और पुत्र को हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 24 के अधीन अधिनिर्णीत 2,00,000/- रुपए की एकमुश्त निर्वाहिका का संदाय नहीं किया और न ही उसने अंतरिम भरणपोषण के लिए कोई भुगतान किया । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के अधीन आवेदन के संबंध में उसने केवल 1,20,000/- रुपए का संदाय उस समय किया जब दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 128 के अधीन आवेदन पत्नी की ओर से फाइल किया गया था । पति ने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए भी कोई वाद फाइल नहीं किया है ।

20. पति ने अभि. सा. 1 के रूप में साक्ष्य दिया है जिसमें उसने यह कथन किया है कि यदि उसकी पत्नी उसके साथ जाने और वैवाहिक जीवन बिताने के लिए तैयार थी तब भी वह उसे अपने साथ ले जाना नहीं चाहता था, अपीलार्थी पत्नी ने यह कथन किया है कि वह अभी भी अपने पति के साथ रहना चाहती थी । पत्नी का सद्भावपूर्ण आशय से इस तथ्य से सिद्ध होता है कि तारीख 16 जुलाई, 2015 को मीडिएशन के पश्चात् वह अपने पति के साथ गई थी और उसके साथ 20 अगस्त, 2015 तक रही थी जिसके पश्चात् उसे उसका भाई और जीजा अभिकथित रूप से वहां से ले गए थे । स्वीकृततः, तारीख 20 अगस्त, 2015 को दंड संहिता की धारा 498क, 323, 504 और 506 तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 के अधीन चल रहे मामले की

सुनवाई थी और न्यायालय में उनकी उपस्थिति दर्ज किए जाने और पुनः साथ-साथ जाने की इच्छा व्यक्त करने के पश्चात् दोनों पक्षकार प्रत्यर्थी-पति के घर के लिए रवाना हुए । यदि पत्नी-पति के साथ रहना नहीं चाहती थी, तब पत्नी तारीख 20 अगस्त, 2015 को अपने पति के घर जाने के लिए बाध्य नहीं थी ।

21. यह भी उल्लेखनीय है कि तारीख 20 अगस्त, 2015 की घटना के संबंध में अपीलार्थी के भाई के द्वारा एक एन. सी. आर. दर्ज कराई गई और प्रत्यर्थी-पति के संबंध में यह कहा गया है कि उसने न्यायालय में शिकायत फाइल की है । पत्नी की ओर से यह अभिकथन किया गया है कि जब दहेज मामले का निपटारा न्यायालय द्वारा नहीं किया गया था, तब तारीख 20 अगस्त, 2015 को न्यायालय से वापस आने के पश्चात् पति द्वारा पत्नी के साथ मारपीट की गई थी और इस घटना में पत्नी क्षतिग्रस्त हो गई थी । पड़ोसी उसे बचाने आए थे और पड़ोसियों द्वारा सूचना दिए जाने पर उसका भाई वहां आया और अपीलार्थी-पत्नी को उसके पुत्र के साथ ले गया । इसके पश्चात् पुलिस द्वारा अपीलार्थी की चिकित्सा परीक्षा कराई गई और अपीलार्थी के भाई द्वारा एन. सी. आर. दर्ज कराई गई ।

22. स्वीकृततः, तारीख 20 अगस्त, 2015 की घटना और पत्नी द्वारा फाइल की गई दहेज संबंधी शिकायत दोनों ही न्यायाधीन है । इस प्रकार विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा निर्णय के पृष्ठ 17 पर निकाला गया यह निष्कर्ष निराधार हो जाता है कि पति के विरुद्ध आपराधिक मामले फाइल किया जाना और पति के साथ रहने से इनकार करना पत्नी द्वारा पति के प्रति क्रूरता कारित किए जाने की कोटि में आता है । इसके अतिरिक्त जब पत्नी और बच्चे को पति/पिता से दूर रहने के लिए विवश किया गया है तब ऐसी स्थिति में उन्हें पति/पिता से भरणपोषण की मांग करने का अधिकार है और यदि पत्नी को पति या सास-श्वसुर द्वारा दहेज या अन्यथा के लिए तंग किया जा रहा है, तब ऐसी पत्नी को विधि के अधीन संरक्षण पाने का अधिकार है । इस प्रकार, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 और दंड संहिता की धारा 498ख, 323, 504 और 506 तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम की धारा 3 और 4 के

अधीन फाइल की गई मात्र इस कार्यवाही को पति के विरुद्ध पत्नी द्वारा क्रूरता कारित किया जाना नहीं माना जा सकता ।

23. जहां तक पति की ओर से किए गए इन अभिकथनों का संबंध है कि अपीलार्थी अपने माता-पिता से अलग रहने के लिए पति पर दबाव डाला करती थी, ये अभिकथन स्वयं ही मिथ्या साबित हो जाते हैं क्योंकि प्रत्यर्थी के पिता ने अपने अभिसाक्ष्य में यह कथन किया है कि वह और उसकी पत्नी एक ही ग्राम में अलग-अलग रहते थे और उनका खान-पान तथा रहन-सहन अलग-अलग था । विवाह-विच्छेद के पक्षकारों के साथ-साथ उनका कोई संबंध नहीं था ।

24. उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक ओर विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय में क्रूरता से संबंधित कोई भी निष्कर्ष अभिलिखित नहीं किया है और मात्र लंबित आपराधिक मामलों के आधार पर अविधिमान्य रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि अपीलार्थी अपने पति के प्रति क्रूरता कारित किए जाने की दोषी है और दूसरी ओर न्यायालय ने अभित्यजन के आधार पर भी कोई निष्कर्ष नहीं निकाला है ।

25. **अशोक कुमार जैन** बनाम **सुमती जैन**[1], **सतेन्द्र कुमार गुप्ता** बनाम **श्रीमती कंचन गुप्ता और अन्य**[2], **नीलम कुमार** बनाम **दयारानी**[3], **के. श्रीनिवास** बनाम **डी. ए. दीपा**[4], **पूनम गुप्ता** बनाम **घनश्याम गुप्ता**[5], **दुर्गा प्रसन्न त्रिपाठी** बनाम **अरुंधति त्रिपाठी, शर्मा/सरोज शर्मा**[6] वाले मामलों में उच्चतम न्यायालय के निर्णयों का अवलंब लेते हुए विद्वान् कुटुंब न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि पक्षकारों के बीच विवाह-बंधन में असुधार्य रूप से भंग हुआ था और यह विवाह पुनर्जीवित किए

---

[1] (2013) 4 ए. डब्ल्यू. सी. 3292 = ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 2916.

[2] (2015) 112 ए. एल. आर. 382 = ए. आई. आर. 2016 (एन. ओ. सी.) 169 (इलाहाबाद).

[3] 2010 (81) ए. एल. आर. 771 = ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 193.

[4] (2013) 5 एस. सी. सी. 226 = ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 2176.

[5] ए. आई. आर. 2003 इलाहाबाद 51.

[6] (2007) 2 एस. सी. सी. 263 = ए. आई. आर. ऑनलाइन 2006 एस. सी. 507.

जाने की सीमा के परे था, इसलिए विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करते हुए उनके विवाह को विघटित करने के सिवाय अन्य कोई रास्ता नहीं था ।

26. हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 का परिशीलन करने पर हमारा यह निष्कर्ष है कि ऐसा कोई आधार नहीं है जिसे "असाध्य विवाह-विघटन" कहा जा सके और इस प्रकार कुटुंब न्यायालय इस अधिनियम की धारा में उल्लिखित आधारों के सिवाय किसी आधार के अन्तर्गत विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान नहीं कर सकता ।

27. जहां तक पति द्वारा अवलंब लिए गए **ऋषिकेश शर्मा** बनाम **सरोज शर्मा**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का संबंध है, हमारा यह निष्कर्ष है कि मामले के तथ्यों के अनुसार पक्षकार पिछले 27 वर्षों से अलग-अलग रह रहे थे । पति ने पुनर्विवाह कर लिया था और वह किसी अन्य महिला के साथ रह रहा था । जिस बच्चे ने पिछले विवाह-बंधन के परिणामस्वरूप जन्म लिया था उसे द्वितीय विवाह में पहले ही समायोजित कर दिया गया था, इसलिए मामले के तथ्यों के आधार माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि विवाह-विघटन असाध्य रूप से हुआ है । वर्तमान मामले के तथ्य उपरोक्त मामले से भिन्न हैं अत: इस निर्णय का लाभ नहीं लिया जा सकता ।

28. **के. श्रीनिवास राव** बनाम **डी. ए. दीपा**[2] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि विवाह पति या पत्नी या दोनों द्वारा कारित की गई कड़वाहट के परिणामस्वरूप असाध्य है या नहीं, न्यायालयों ने सदैव असाध्य विवाह-विघटन को एक गंभीर परिस्थिति माना है जिसके लिए विवाह-बंधन का टूटना आवश्यक हो जाता है । ऐसा विवाह जो प्रत्येक प्रयोजन के लिए मृत समान है और यदि पक्षकार इच्छुक नहीं है तो न्यायालय के निर्णय द्वारा वह पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता । इसका यह कारण है कि विवाह का सीधा संबंध मानवीय भावनाओं से होता है और यदि ऐसी भावनाएं

---

[1] (2007) 2 एस. सी. सी. 263 = ए. आई. आर. ऑनलाइन 2006 एस. सी. 507.

[2] (2013) 5 एस. सी. सी. 226 = ए. आई. आर. 2013 एस. सी. 2176.

निष्क्रिय हो जाएं तब न्यायालय द्वारा पारित की गई डिक्री के माध्यम से बनावटी बंधन सृजित करने से विवाह पुनर्जीवित नहीं हो सकता ।

29. **दर्शन गुप्ता** बनाम **राधिका गुप्ता**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि उच्चतम न्यायालय ने कुछ मामलों में असाध्य भंग के आधार पर विवाह विघटन किया है किंतु उन मामलों में विधिक स्थिति पर विचार नहीं किया गया था और इसलिए उन्हें नजीर नहीं कहा जा सकता । इस निर्णय के पैरा 52 में भी यह उल्लेख है कि असाध्य विवाह विघटन के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान नहीं की जा सकती जिसका मात्र कारण यह है कि विघटन केवल पति की ओर से किया गया है । उच्चतम न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि जिस मामले में पत्नी अपने पति के साथ संबंध बनाए रखने और उसके साथ सामान्य वैवाहिक जीवन बिताने की इच्छुक हो तब ऐसी स्थिति में न्यायालय विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान नहीं कर सकता ।

30. हमने यह भी देखा है कि **विष्णु दत्त शर्मा** बनाम **मंजू शर्मा**[2] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान किए जाने के लिए विधानमंडल द्वारा असाध्य विवाह विघटन जैसा कोई आधार उपलब्ध नहीं कराया गया है, इसलिए न्यायालय हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 में ऐसा कोई आधार नहीं जोड़ सकता जो अधिनियम में संशोधन किए जाने की कोटि में आ जाए और ऐसा किया जाना केवल विधानमंडल का कार्य है । असाध्य विघटन के आधार पर न्यायिक निर्णय द्वारा विवाह-विच्छेद किया जाना अधिनियम की धारा 13 में खंड जोड़े जाने की कोटि में आएगा जिसका यह प्रभाव होगा कि असाध्य विवाह विघटन भी विवाह-विच्छेद का एक आधार है । विधि अधिनियमित करना या उसमें संशोधन करना न्यायालय का नहीं अपितु संसद् का कार्य है ।

---

[1] (2013) 9 एस. सी. सी. 1 = ए. आई. आर. 2013 एस. सी. (सप्ली.) 85.

[2] (2009) 6 एस. सी. सी. 379 = ए. आई. आर. 2009 एस. सी. 2254.

31. **गुरबक्श सिंह** बनाम **हरमिन्दर कौर**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने ऐसा ही मत व्यक्त किया है जिसमें यह उल्लेख किया गया कि उच्चतम न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए विरल अवसरों पर ही अधिनियम की धारा 13 में उल्लिखित आधारों के प्रतिकूल असाधारण अनुतोष प्रदान किया है ।

32. संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन उच्चतम न्यायालय द्वारा जिस शक्ति का प्रयोग किया जाता है वह असाधारण, इसलिए प्रत्यर्थी उक्त विनिश्चय से कोई लाभ नहीं ले सकता ।

33. कुटुंब न्यायालय ने विवाह के असाध्य विघटन के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान करके गलत किया है क्योंकि क्रूरता और अभित्यजन जैसे दोनों आधार विवाह-विच्छेद की ईप्सा के लिए अर्जीदार पति द्वारा साबित नहीं किए गए हैं ।

34. परिणामतः, अपर प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, बिजनौर द्वारा तारीख 30 नवंबर, 2019 को पारित निर्णय और डिक्री एतद्द्वारा अपास्त किए जाते हैं । इस मामले में के प्रत्यर्थी अंकित कुमार की ओर से हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा के अधीन फाइल की गई 2017 की विवाह अर्जी सं. 1026 (अंकित कुमार बनाम रीता) तद्नुसार खारिज की जाती है ।

35. अपील मंजूर की जाती है । खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

अस.

---

[1] (2010) 14 एस. सी. सी. 301 = ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 114.

सुधीर नायक

बनाम

लिली कुमारी नायक

(2019 की नियमित द्‌वितीय अपील सं. 81)

तारीख 10 मार्च, 2021

न्यायमूर्ति डी. दास

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 25 (2) [सपठित कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 7] – पत्नी द्‌वारा स्थायी निर्वाहिका का दावा किया जाना – पति और उसके परिजनों द्‌वारा पत्नी से दहेज को लेकर असंतोष प्रकट किया जाना – अलग रहने के दौरान भी पति द्‌वारा पत्नी की देख-रेख न किया जाना – पत्नी के साक्ष्य की संपुष्टि उसके पिता के साक्ष्य से होती है और पति यह साबित नहीं कर सका कि उसने वैवाहिक गृह से अलग रहने के दौरान भी पत्नी का भरणपोषण किया था और यह कि उसने पत्नी के साथ मानसिक क्रूरता कारित नहीं की है, अतः अपीलार्थी की आय को दृष्टिगत करते हुए निचले अपील न्यायालय द्‌वारा तय की गई निर्वाहिका की राशि न्यायोचित है ।

इस मामले में अर्जीदार पत्नी का विवाह प्रत्यर्थी के साथ तारीख 27 मई, 2005 को हुआ था । उक्त विवाह में प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के अन्य सदस्यों द्‌वारा की गई मांग के अनुसार 70,000/- रुपए की राशि, एक हीरो होंडा मोटरसाइकिल, एक सोने की जंजीर, अंगूठी घड़ी 40,000/- रुपए नकद पोशाक के लिए और गृहस्थी की अन्य वस्तुएं, रंगीन टेलीविजन आदि दिए गए थे तथा उसे पृथक् रूप से सोने के आभूषण भी भेंट किए गए थे । इसके अतिरिक्त उसका मामला यह है कि विवाहेत्तर संभोग के पश्चात् उसके वैवाहिक जीवन में प्रसन्नता बहुत कम समय तक रही थी । यह कथन किया गया है कि विवाह के कुछ समय पश्चात् ही प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के सदस्यों ने दहेज की

वस्तुओं को लेकर असंतोष व्यक्त किया और उसका उत्पीड़न करना प्रारंभ कर दिया । अर्जीदार को कोई अन्य अनुकल्प नहीं मिलने पर जब उसने उसके माता-पिता को इस बारे में सूचित किया, जो उसी गांव में निवास करते थे, तो उन्होंने प्रत्यर्थी से ऐसा न करने का अनुरोध किया तथापि, इसका कोई भी सार्थक परिणाम नहीं निकला और जहां तक अर्जीदार पर उत्पीड़न का संबंध है, वह पहले जैसे ही जारी रहा । अर्जीदार, प्रत्यर्थी के साथ मेरठ जहां वह सेवारत था, के स्थान पर रहने गई थी । यह कथित किया गया है कि मेरठ में निवास करने के दौरान, प्रत्यर्थी ने उसे किसी से भी बात नहीं करने देकर उसका मानसिक रूप से उत्पीड़न किया और जब प्रत्यर्थी बाहर जाता था तो अधिकांश समय उसे ताले में बंद रखता था । उन अवधियों के दौरान से ही, प्रत्यर्थी ने यह कहना भी प्रारंभ कर दिया था कि यदि उसने कहीं और विवाह किया होता तो उसे अत्यधिक दहेज मिलता । इसके अतिरिक्त अर्जीदार का यह भी कहना है कि उसे प्रत्यर्थी (पति) द्वारा सुबह से लेकर रात तक गृहस्थी का सारा काम करने के लिए विवश किया जाता था, यहां तक कि उसकी गर्भावस्था के दौरान भी जब वह स्वस्थ भी नहीं थी । इस अवधि के दौरान वह बहुत कमजोरी का अनुभव करती थी और इसलिए अपने माता-पिता के अनुरोध पर वह उनके घर गई जहां उसने प्रसव कराया था । तथापि, जन्म के कुछ देर पश्चात् ही शिशु की मृत्यु हो गई । यह कथित किया गया है कि उस अवधि के दौरान न तो प्रत्यर्थी और न हीं उसके कुटुंब का कोई सदस्य उसे देखने आया था और न ही अर्जीदार की देखभाल करने आया था । यद्यपि, प्रत्यर्थी का पैतृक गृह उसी गांव में स्थित है जहां अर्जीदार का पैतृक घर स्थित है, फिर भी प्रत्यर्थी का व्यवहार पूर्ण रूप से भिन्न और अप्रायिक दर्शित होता है । इसके अतिरिक्त उसका मामला यह है कि प्रसव के समय अत्यधिक रक्तस्राव होने कारण वह कोमा की अवस्था में चली गई थी और जिसके बारे में प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के अन्य सदस्यों को समय-समय पर विधिवत् सूचित किया जाता रहा था, इस पर किसी ने भी किसी भी प्रकार से कोई उत्तर नहीं दिया । इसके अतिरिक्त यह कथित किया गया कि इस सब के बावजूद एक सुखी वैवाहिक जीवन की पूरी उम्मीद के साथ फरवरी, 2007 के माह में अर्जीदार पुन: प्रत्यर्थी के घर गई । सुखी

जीवन को स्थापित करने की उसकी उम्मीद जल्द ही तब टूट गई जब रात प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के सदस्यों ने उसके साथ दुर्व्यवहार करने के अपने पुराने आचरण को दोहराया और उन्होंने उस पर हमला भी किया । प्रत्यर्थी और उसके कुटंब के सदस्यों के इस प्रकार के आचरण और व्यवहार के कारण उसने स्वयं को प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के सदस्यों के साथ रहने के लिए असुरक्षित पाया तथा उन्होंने धमकी देते हुए खुले तौर पर कहा कि यदि किसी भी प्रकार से मामले की सूचना पुलिस को दी गई तो उसका जीवन संकट में आ जाएगा, तब अर्जीदार को अपने पिता के घर वापस आने के लिए विवश होना पड़ा । प्रत्यर्थी के साथ रहने की उसकी सभी इच्छा और आशा होने के बावजूद परिस्थितियां ऐसी बनी कि अर्जीदार के पास घर छोड़ने के अलावा और कोई अनुकल्प नहीं था । इस प्रकार वैवाहिक गृह को छोड़ने और पृथक् रूप से अपने पिता के घर में रहने के लिए विवश होने के कारण अर्जीदार ने कुछ समय पश्चात् जिला मजिस्ट्रेट, गंजम के समक्ष शिकायत की, जिसने स्थानीय पुलिस से इस मामले की जांच करने को कहा । उस स्तर पर सुलह का प्रयास किया गया था जो कि विफल हो गया था । अंत में प्रत्यर्थी और उसके कुटंब के सदस्यों के विरुद्ध एक आपराधिक मामला प्रारंभ किया गया और पुलिस ने भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 34 के साथ पठित धारा 498क/341/906 के अधीन अपराध कारित करने का प्रथमदृष्ट्या मामला पाया तथा उन्हें न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए लाने के लिए आरोप पत्र प्रस्तुत किया । अर्जीदार का पक्षकथन यह है कि फरवरी, 2007 के पश्चात् से प्रत्यर्थी ने उसे वापस ले जाने का कोई प्रयत्न नहीं किया और यहां तक कि उसने उसके भरणपोषण का ध्यान नहीं रखा और धन भेजने की बात तो दूर ही थी वह कैसे रह रही है, इसकी भी जानकारी नहीं ली । इस प्रकार अर्जीदार का जीवन दयनीय हो गया था जो सात वर्षों की लम्बी अवधि तक इसी प्रकार चलता रहा । इसलिए अर्जीदार ने न्यायालय के आदेश से अपने वैवाहिक बंधन को तोड़ना उचित समझा । इसलिए उसने हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अधीन प्रत्यर्थी के साथ अपने विवाह के विघटन की डिक्री की प्रार्थना करते हुए एक समावेदन ज्येष्ठ न्यायाधीश, छतरपुर गंजम के न्यायालय में फाइल किया । इस अपील

के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – उपरोक्त की पृष्ठभूमि में, इन तीनों विवाद्यकों पर निचले अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों के समर्थन में जो कारण साक्ष्य से सृजित किए गए हैं उन पर विचार किया जाना आवश्यक है । पक्षकारों के बीच विवाह तारीख 27 मई, 2005 को अनुष्ठापित हुआ था । प्रत्यर्थी उस समय सेवा में हवलदार के रूप में कार्यरत था । स्वीकृत रूप से अर्जीदार अपने विवाह के पश्चात् प्रत्यर्थी पर निर्भर थी और उसके पास अपनी आय का कोई स्रोत नहीं था । शपथ पर अर्जीदार का वृत्तांत यह है कि विवाह के लगभग एक माह पश्चात् उसे अपनी ससुराल में कठिनाइयों का सामना तब करना पड़ा जब प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के अन्य सदस्यों ने दहेज के सामान को लेकर अपना असंतोष अभिव्यक्त करने लगे और उसके प्रति अचानक उनका व्यवहार परिवर्तित हो गया । उसने यह भी कथन किया है कि जब वह मेरठ गई और प्रत्यर्थी के साथ रही थी, तो वहां भी उसे मानसिक रूप से यातना दी गई । अपने साक्ष्य में, उसने अन्य विवरणों का भी वर्णन किया है । उसके साक्ष्य की संपुष्टि उसके पिता द्वारा की गई है जिसकी परीक्षा अभि. सा. 2 के रूप में कराई गई है । अर्जीदार ने उस रीति के बारे में भी कथन किया है जिसमें अर्जीदार के साथ उस अवधि के दौरान व्यवहार किया गया जब वह गर्भवती थी और अन्य घटनाएं घटित हुई थीं । अभि. सा. 1 के साक्ष्य की तात्विक विशिष्टियों पर अभि. सा. 2 के साक्ष्य द्वारा संपुष्टि की गई है । प्रत्यर्थी की ओर से केवल उसी की परीक्षा कराई गई है । प्रत्यर्थी ने साक्ष्य के माध्यम से इस तथ्य को स्थापित नहीं किया है कि उसने अर्जीदार के पृथक् रहने के दौरान किसी भी समय उसे केवल उसकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भी कोई राशि प्रदान की थीं । अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों को सावधानीपूर्वक पढ़ने से यह दर्शित होता है कि यह प्रत्यर्थी ही है जो अर्जीदार को उसके पिता के घर पर छोड़ने का उत्तरदायी है और अर्जीदार के पास ऐसा करने का पर्याप्त कारण था । पक्षकारों का एक ही गांव में दो अलग-अलग घरों में लंबे समय तक रहना और उस अवधि के

दौरान किसी भी प्रकार से प्रत्यर्थी की ओर से कोई प्रतिक्रिया का न होना भी उस आचरण के समतुल्य है जो अर्जीदार पर उस प्रकृति की मानसिक क्रूरता को साबित करता है, जिसमें युक्तियुक्त रूप से यह प्रत्याशा नहीं की जा सकती है कि वे दोनों एक साथ रह सकें । अभिलेख पर ऐसे साक्ष्य के होने से अपील न्यायालय ने यह मत व्यक्त करते हुए कहा कि उनके कटु वैवाहिक विवाद के लिए अर्जीदार की अपेक्षा प्रत्यर्थी अधिक उत्तरदायी था, जिसके कारण अंततोगत्वा अर्जीदार को अपने पिता के घर में आकर रहना पड़ा था, इसमें यह कहना गलत नहीं होगा कि यह सब उक्त साक्ष्य के अनुचित मूल्यांकन का परिणाम है तथा उस विषय पर निकाला गया निष्कर्ष अनुचित और दोषपूर्ण है । प्रत्यर्थी के वेतन और अन्य सभी सुसंगत पहलुओं के साथ-साथ परिवर्ती परिस्थितियों को देखते हुए अर्जीदार जो कि 30-35 वर्ष की आयु के भीतर है को स्थायी निर्वाहिका देना अन्यायपूर्ण और अयुक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता है । ऐसा कहने के पश्चात् इस मामले में सारवान् विधि के प्रश्न अंतर्वलित होने की अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलील को जैसा कि इस निर्णय के पैरा 6 में उपदर्शित किया गया है, अस्वीकार किया जाता है । (पैरा 9)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2019 की नियमित द्वितीय अपील सं. 81.

2014 के वैवाहिक मामला सं. 2 के सम्बन्ध में निचले अपील न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध द्वितीय अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री एस. एस. राव, ए. के. साहू और ए. के. परीदा

प्रत्यर्थी की ओर से –

न्यायमूर्ति डी. दास – अपीलार्थी ने 2016 की विवाह विषयक अपील सं. 4 में विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, छतरपुर (गंजम) द्वारा पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर यह अपील सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "संहिता" कहा गया है) की धारा 100 के अधीन फाइल की है ।

2. सुविधा और स्पष्टता के लिए और साथ ही भ्रम से बचने के लिए इसमें इसके पश्चात् पक्षकारों को उसी शब्द से निर्दिष्ट किया गया है जिससे उन्हें विचारण न्यायालय के समक्ष मूल कार्यवाही में किया गया था अर्थात् अपीलार्थी को 'अर्जीदार' और जबकि प्रत्यर्थी को 'प्रत्यर्थी' ही कहा गया है ।

3. अर्जीदार ने विद्वान् सिविल न्यायाधीश, छतरपुर (गंजम) के समक्ष एक आवेदन प्रत्यर्थी के साथ उसके विवाह का विघटन करने तथा स्त्रीधन की वापसी और स्थायी निर्वाहिका के लिए फाइल किया था, जिसे 2014 के विवाह विषयक मामला सं. 2 के रूप में संख्यांकित किया गया था । वाद खारिज किए जाने के कारण अर्जीदार (पत्नी) ने अपील प्रस्तुत की थी । निचले अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया और तद्नुसार, अपील स्वीकार की जाती है ।

अर्जीदार का मामला यह है कि प्रत्यर्थी के साथ उसका विवाह तारीख 27 मई, 2005 को हुआ था । उक्त विवाह में प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के अन्य सदस्यों द्वारा की गई मांग के अनुसार 70,000/- रुपए की राशि, एक हीरो होंडा मोटरसाइकिल, एक सोने की जंजीर, अंगूठी घड़ी 40,000/- रुपए नकद पोशाक के लिए और गृहस्थी की अन्य वस्तुएं, रंगीन टेलीविजन आदि दिए गए थे तथा उसे पृथक् रूप से सोने के आभूषण भी भेंट किए गए थे ।

इसके अतिरिक्त उसका मामला यह है कि विवाहोत्तर संभोग के पश्चात् उसके वैवाहिक जीवन में प्रसन्नता बहुत कम समय तक रही थी । यह कथन किया गया है कि विवाह के कुछ समय पश्चात् ही प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के सदस्यों ने दहेज की वस्तुओं को लेकर असंतोष व्यक्त किया और उसका उत्पीड़न करना प्रारंभ कर दिया । अर्जीदार को कोई अन्य अनुकल्प नहीं मिलने पर जब उसने उसके माता-पिता को इस बारे में सूचित किया, जो उसी गांव में निवास करते थे, तो उन्होंने प्रत्यर्थी से ऐसा न करने का अनुरोध किया तथापि, इसका कोई भी सार्थक परिणाम नहीं निकला और जहां तक अर्जीदार पर उत्पीड़न का संबंध है, वह पहले जैसे ही जारी रहा । अर्जीदार, प्रत्यर्थी के साथ मेरठ

जहां वह सेवारत था, के स्थान पर रहने गई थी । यह कथित किया गया है कि मेरठ में निवास करने के दौरान, प्रत्यर्थी ने उसे किसी से भी बात नहीं करने देकर उसका मानसिक रूप से उत्पीड़न किया और जब प्रत्यर्थी बाहर जाता था तो अधिकांश समय उसे ताले में बंद रखता था । उन अवधियों के दौरान से ही, प्रत्यर्थी ने यह कहना भी प्रारंभ कर दिया था कि यदि उसने कहीं और विवाह किया होता तो उसे अत्यधिक दहेज मिलता । इसके अतिरिक्त अर्जीदार का यह भी कहना है कि उसे प्रत्यर्थी (पति) द्वारा सुबह से लेकर रात तक गृहस्थी का सारा काम करने के लिए विवश किया जाता था, यहां तक कि उसकी गर्भावस्था के दौरान भी जब वह स्वस्थ भी नहीं थी । इस अवधि के दौरान वह बहुत कमजोरी का अनुभव करती थी और इसलिए अपने माता-पिता के अनुरोध पर वह उनके घर गई जहां उसने प्रसव कराया था । तथापि, जन्म के कुछ देर पश्चात् ही शिशु की मृत्यु हो गई । यह कथित किया गया है कि उस अवधि के दौरान न तो प्रत्यर्थी और न हीं उसके कुटुंब का कोई सदस्य उसे देखने आया था और न ही अर्जीदार की देखभाल करने आया था । यद्यपि, प्रत्यर्थी का पैतृक गृह उसी गांव में स्थित है जहां अर्जीदार का पैतृक घर स्थित है, फिर भी प्रत्यर्थी का व्यवहार पूर्ण रूप से भिन्न और अप्रायिक दर्शित होता है । इसके अतिरिक्त उसका मामला यह है कि प्रसव के समय अत्याधिक रक्तस्राव होने के कारण वह कोमा की अवस्था में चली गई थी और जिसके बारे में प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के अन्य सदस्यों को समय-समय पर विधिवत् सूचित किया जाता रहा था, इस पर किसी ने भी किसी भी प्रकार से कोई उत्तर नहीं दिया ।

इसके अतिरिक्त यह कथित किया गया कि इस सब के बावजूद एक सुखी वैवाहिक जीवन की पूरी उम्मीद के साथ फरवरी, 2007 के माह में अर्जीदार पुन: प्रत्यर्थी के घर गई । सुखी वैवाहिक जीवन को स्थापित करने की उसकी उम्मीद जल्द ही तब टूट गई जब उसी रात प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के सदस्यों ने उसके साथ दुर्व्यवहार करने के अपने पुराने आचरण को दोहराया और उन्होंने उस पर हमला भी किया । प्रत्यर्थी और उसके कुटंब के सदस्यों के इस प्रकार के आचरण और व्यवहार के कारण उसने स्वयं को प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के सदस्यों

के साथ रहने के लिए असुरक्षित पाया तथा उन्होंने धमकी देते हुए खुले तौर पर कहा कि यदि किसी भी प्रकार से मामले की सूचना पुलिस को दी गई तो उसका जीवन संकट में आ जाएगा, तब अर्जीदार को अपने पिता के घर वापस आने के लिए विवश होना पड़ा । प्रत्यर्थी के साथ रहने की उसकी सभी इच्छा और आशा होने के बावजूद परिस्थितियां ऐसी बनी कि अर्जीदार के पास घर छोड़ने के अलावा और कोई अनुकल्प नहीं था । इस प्रकार वैवाहिक गृह को छोड़ने और पृथक् रूप से अपने पिता के घर में रहने के लिए विवश होने के कारण अर्जीदार ने कुछ समय पश्चात् जिला मजिस्ट्रेट, गंजम के समक्ष शिकायत की, जिसने स्थानीय पुलिस से इस मामले की जांच करने को कहा । उस स्तर पर सुलह का प्रयास किया गया था जो कि विफल हो गया था । अंत में प्रत्यर्थी और उसके कुटंब के सदस्यों के विरुद्ध एक आपराधिक मामला प्रारंभ किया गया और पुलिस ने भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 34 के साथ पठित धारा 498-क/341/906 के अधीन अपराध कारित करने का प्रथमदृष्ट्या मामला पाया तथा उन्हें न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए लाने के लिए आरोप पत्र प्रस्तुत किया । अर्जीदार का पक्षकथन यह है कि फरवरी, 2007 के पश्चात् से प्रत्यर्थी ने उसे वापस ले जाने का कोई प्रयत्न नहीं किया और यहां तक कि उसने उसके भरणपोषण का ध्यान नहीं रखा और धन भेजने की बात तो दूरी ही थी वह कैसे रह रही है, इसकी भी जानकारी नहीं ली । इस प्रकार अर्जीदार का जीवन दयनीय हो गया था जो सात वर्षों की लम्बी अवधि तक इसी प्रकार चलता रहा । इसलिए अर्जीदार ने न्यायालय के आदेश से अपने वैवाहिक बंधन को तोड़ना उचित समझा । इसलिए उसने हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अधीन प्रत्यर्थी के साथ अपने विवाह के विघटन की डिक्री की प्रार्थना करते हुए एक समावेदन ज्येष्ठ न्यायाधीश, छतरपुर गंजम के न्यायालय में फाइल किया ।

4. प्रत्यर्थी को समन किया गया और उसने अपना लिखित कथन फाइल किया है । उसने यातना, बुरा बर्ताव, दहेज की मांग आदि सभी प्रकथनों से इनकार किया है । उसका मामला यह है कि यद्यपि हर बार वह अर्जीदार की चिकित्सीय जांच कराने के लिए हितबद्ध था, परन्तु

अर्जीदार इससे बच रही थी । अंततः, तारीख 19 सितंबर, 2006 को उसे बेंगलुरु के लिए जाना पड़ा उसी दिन उसे छतरपुर अस्पताल में जन्म के तुरंत बाद शिशु की मृत्यु की सूचना प्राप्त हुई थी । पति का पक्षकथन यह है कि यद्यपि उसने वैवाहिक जीवन के प्रत्यावर्तन के लिए भरपूर प्रयास किए थे, किन्तु अर्जीदार की ओर स्पष्ट रूप से इनकार कर देने से संभव नहीं हो सका । यह कथन किया गया कि उक्त कारणों से उसने दांपत्य अधिकार के प्रत्यास्थापन के लिए हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अधीन एक आवेदन भी फाइल किया था । पति के अनुसार पत्नी की ओर से की गई विवाह-विच्छेद की कार्यवाही उस कार्यवाही के प्रतिरोध में है, जो पति ने दांपत्य अधिकार के प्रत्यास्थापन के लिए प्रारंभ की थी । इन अभिवचनों के आधार पर विचारण न्यायालय ने आठ विवाद्यकों को विरचित किया था, जिनमें से निर्णायक विवाद्यक सं. iii, iv और v हैं, जो तथ्यात्मक पहलुओं अर्थात् विवाह के विघटन से संबंधित हैं और ये विवाद्यक निम्न प्रकार हैं :–

"(iii) क्या प्रत्यर्थी ने अर्जीदार के साथ क्रूरता की है, जो विवाह के विघटन का आधार है ?

(iv) क्या प्रत्यर्थी अभित्यजन का दोषी है, जो विवाह-विच्छेद का आधार है ? और

(v) क्या वर्तमान अर्जीदार के विवाह को विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विघटित कर दिया गया है ?"

5. विवाद्यकों के परस्पर रूप से जुड़े होने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि विचारण न्यायालय ने उन विवाद्यकों का विनिश्चय एक साथ करके ठीक ही किया था । मौखिक और दस्तावेज़ी दोनों प्रकार के साक्ष्यों को देखने पर विचारण न्यायालय का अंतिम निष्कर्ष यह है कि अर्जीदार इस तथ्य को स्थापित करने में असफल रही है कि प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के अन्य सदस्यों की ओर से उसके साथ क्रूरता इस सीमा तक की गई जो प्रत्यर्थी के सहचर्य से उसके प्रत्याहत करने को और उसके पृथक् रूप से निवास करने को न्यायोचित ठहरा सके और इस प्रकार यह कहा जाता है कि अर्जीदार का उसके पति के साहचर्य से

प्रत्याहृत किया जाना बिना किसी युक्तियुक्त कारण के था । उपरोक्त निष्कर्ष से संपूर्ण कार्यवाही हो जाती है ।

उपरोक्त से व्यथित होकर अर्जीदार ने अपील फाइल की है । निचले अपील न्यायालय ने विवाद्यक सं. iii, iv और v पर विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्ष को उलट दिया है । अर्जीदार के पक्ष में उन महत्वपूर्ण विवाद्यकों पर जवाब अभिलिखित करने के पश्चात् अर्जीदार की प्रार्थना पूर्व कथित सीमा तक अनुज्ञात की जाती है ।

इस बात को ध्यान में रखते हुए प्रत्यर्थी (पति) इस न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील फाइल कर रहा है ।

6. श्री एस. एस. राव प्रत्यर्थी (पति) के विद्वान् काउंसेल ने दलील दी है कि इस मामले में निम्नलिखित सारभूत विधि प्रश्न अंतर्वलित है :–

> "(क) क्या निचले अपील न्यायालय ने विवाह-विच्छेद की ईप्सा करने वाले सिविल वाद में क्रूरता और अभित्यजन पर निष्कर्ष निकालने के लिए साक्ष्यों की संभाव्यता की प्रधानता के सिद्धांतों का अवलंब लेकर गलती की है ?
>
> (ख) क्या इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने केवल इस निष्कर्ष पर कि अपीलार्थी अधिक जिम्मेदार है, विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री को पलटने में गलती की है ?
>
> (ग) क्या विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने यह अनुपालन करने में अभिलेख की गलती की है कि अपीलार्थी किसी भी दस्तावेज को प्रस्तुत करने में असफल रहा है, जबकि यह स्वीकृत है कि अपीलार्थी ने ही प्रत्यर्थी द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराए जाने के बहुत पहले ही हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 9 के अधीन आवेदन फाइल कर दिया था ; और
>
> (घ) क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, निचले अपील न्यायालय ने 5,00,000/- रुपए की स्थायी निर्वाहिका को तय करने की गलती की है ?"

श्री राव ने दलील दी है कि निचले अपील न्यायालय ने विवाद्यक सं. iii, iv और v के उत्तरों को अभिलिखित करते हुए पक्षकारों द्वारा दिए गए साक्ष्य का मूल्यांकन करने में पूरी तरह से गलती की है और तद्नुसार अर्जीदार के पक्ष में क्रूरता के आधारों और विवाह के विघटन के लिए अभित्यजन के निष्कर्ष को स्थापित करना दोषपूर्ण है ।

7. उपरोक्त दलीलों को ध्यान में रखते हुए मैंने विचारण न्यायालय के साथ-साथ निचले अपील न्यायालय के निर्णयों का ध्यानपूर्वक परिशीलन किया है ।

सुस्थापित विधि यह है कि प्रथम अपील न्यायालय को विधि के अधीन साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करने की पूर्ण शक्ति प्राप्त है, तथा ठोस तर्कों पर विचारण न्यायालय के निष्कर्ष से सहमत हो सकते हैं, या प्रतिकूल मत ले सकते हैं । साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन करने पर यदि अपील न्यायालय अपने स्तर पर इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि विचारण न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष साक्ष्य के विरुद्ध है तो स्वयं का निष्कर्ष अभिलिखित करना उसके अधिकार के अधीन उचित होगा ।

इस विषय पर भी विधि सुस्थिर है द्वितीय अपील तब फाइल की जा सकती है जब मामले में विधि का कोई सारभूत प्रश्न अन्तर्वलित हो । जहां तक मामले के तथ्यात्मक पहलु पर निकाले गए निष्कर्ष का सम्बन्ध है, जो साक्ष्य के मूल्यांकन से अभिप्राप्त हुआ है, वर्तमान में ऐसा कोई भी विषय नहीं है जो विधि की दृष्टि में अनिर्णीत हो और ऐसे ही विषय पर द्वितीय अपील में सारभूत प्रश्न के रूप में तब विचार किया जा सकता है जब न्यायालय के समक्ष यह साबित कर दिया जाता है कि साक्ष्य का मूल्यांकन पूर्णतया अनुचित रूप से किया गया है और यदि यह मूल्यांकन उचित रूप से किया जाता तो न्यायालय द्वारा इसके अन्यथा निष्कर्ष निकाला जाता ।

8. प्रत्यर्थी ने उन तीन विवाद्यकों पर निचले अपील न्यायालय के निष्कर्ष पर आक्षेप किया है अर्थात् विवाद्यक सं. iii, iv जिन पर विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्ष के प्रतिकूल निष्कर्ष इस आधार पर निकाला गया है कि उक्त सम्बन्ध में सुस्थापित विधि को

ध्यान में रखे बिना उक्त साक्ष्य का अनुचित करके निष्कर्ष निकाला गया है, जिससे विवाह के विघटन का निष्कर्ष को अभिलिखित किया जा सके ।

9. उपरोक्त की पृष्ठभूमि में, इन तीनों विवाद्यकों पर निचले अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों के समर्थन में जो कारण साक्ष्य से सृजित किए गए हैं उन पर विचार किया जाना आवश्यक है । पक्षकारों के बीच विवाह की तारीख 27 मई, 2005 को अनुष्ठापित हुआ था । प्रत्यर्थी उस समय सेवा में हवलदार के रूप में कार्यरत था । स्वीकृत रूप से अर्जीदार अपने विवाह के पश्चात् प्रत्यर्थी पर निर्भर थी और उसके पास अपनी आय का कोई स्रोत नहीं था । शपथ पर अर्जीदार का वृत्तांत यह है कि विवाह के लगभग एक माह पश्चात् उसे अपनी ससुराल में कठिनाइयों का सामना तब करना पड़ा जब प्रत्यर्थी और उसके कुटुंब के अन्य सदस्यों ने दहेज के सामान को लेकर अपना असंतोष अभिव्यक्त करने लगे और उसके प्रति अचानक उनका व्यवहार परिवर्तित हो गया । उसने यह भी कथन किया है कि जब वह मेरठ गई और प्रत्यर्थी के साथ रही थी, तो वहां भी उसे मानसिक रूप से यातना दी गई । अपने साक्ष्य में, उसने अन्य विवरणों का भी वर्णन किया है । उसके साक्ष्य की संपुष्टि उसके पिता द्वारा की गई है जिसकी परीक्षा अभि. सा. 2 के रूप में कराई गई है । अर्जीदार ने उस रीति के बारे में भी कथन किया है जिसमें अर्जीदार के साथ उस अवधि के दौरान व्यवहार किया गया जब वह गर्भवती थी और अन्य घटनाएं घटित हुई थी । अभि. सा. 1 के साक्ष्य की तात्विक विशिष्टियों पर अभि. सा. 2 के साक्ष्य द्वारा संपुष्टि की गई है । प्रत्यर्थी की ओर से केवल उसी की परीक्षा कराई गई है । प्रत्यर्थी ने साक्ष्य के माध्यम से इस तथ्य को स्थापित नहीं किया है कि उसने अर्जीदार के पृथक् रहने के दौरान किसी भी समय उसे केवल उसकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भी कोई राशि प्रदान की थीं । अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों को सावधानीपूर्वक पढ़ने से यह दर्शित होता है कि यह प्रत्यर्थी ही है जो अर्जीदार को उसके पिता के घर पर छोड़ने का उत्तरदायी है और अर्जीदार के पास ऐसा करने का पर्याप्त कारण था । पक्षकारों का एक ही गांव में दो अलग-अलग घरों में लंबे समय तक रहना और उस अवधि के दौरान किसी भी

प्रकार से प्रत्यर्थी की ओर से कोई प्रतिक्रिया का न होना भी उस आचरण के समतुल्य है जो अर्जीदार पर उस प्रकृति की मानसिक क्रूरता को साबित करता है, जिसमें युक्तियुक्त रूप से यह प्रत्याशा नहीं की जा सकती है कि वे दोनों एक साथ रह सकें । अभिलेख पर ऐसे साक्ष्य के होने से अपील न्यायालय ने यह मत व्यक्त करते हुए कहा कि उनके कटु वैवाहिक विवाद के लिए अर्जीदार की अपेक्षा प्रत्यर्थी अधिक उत्तरदायी था, जिसके कारण अंततोगत्वा अर्जीदार को अपने पिता के घर में आकर रहना पड़ा था, इसमें यह कहना गलत नहीं होगा कि यह सब उक्त साक्ष्य के अनुचित मूल्यांकन का परिणाम है तथा उस विषय पर निकाला गया निष्कर्ष अनुचित और दोषपूर्ण है ।

प्रत्यर्थी के वेतन और अन्य सभी सुसंगत पहलुओं के साथ-साथ परिवर्ती परिस्थितियों को देखते हुए अर्जीदार जो कि 30-35 वर्ष की आयु के भीतर है को स्थायी निर्वाहिका देना अन्यायपूर्ण और अयुक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता है । ऐसा कहने के पश्चात् इस मामले में सारवान् विधि के प्रश्न अंतर्वलित होने की अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलील को जैसा कि इस निर्णय के पैरा 6 में उपदर्शित किया गया है, अस्वीकार किया जाता है ।

10. पूर्वोक्त के परिणामस्वरूप, अपील में स्वीकार करने के लिए गुणता नहीं है और तद्नुसार खारिज की जाती है । तथापि, विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में, खर्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

अम./अस.

पीताम्बर जेना

बनाम

ओडिशा राज्य और अन्य

(2021 की सिविल रिट याचिका सं. 31823)

तारीख 7 अक्तूबर, 2021

न्यायमूर्ति सी. आर. दास

मानव अंगों और ऊतकों का प्रतिरोपण अधिनियम, 1994 (1994 का 42) – धारा 24 [सपठित मानव अंगों का प्रतिरोपण नियम, 1995 का नियम 4क (4)] – वृक्क प्रतिरोपण – याची का वृक्क रोग से ग्रसित पाया जाना – वृक्क प्रतिरोपण की तत्काल आवश्यकता होना – प्रस्तावित दाता का नातेदार न होना – मेडिकल कालेज कटक द्वारा प्रतिरोपण का आवेदन रद्द किया जाना – रद्दकरण के विरुद्ध याचिका – प्रतिरोपण नियम, 1995 का अवलंब लिया जाना – उक्त नियम के अधीन यह उपबंधित है कि मानव अंगों का प्रतिरोपण नियम, 1995 के अधीन प्रदत्त प्रमाणपत्र के खंड 1 में उल्लिखित शब्द "केवल नातेदार के प्रतिरोपण के लिए" रागिस्त्रिकरण रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र से हटा दिए गए हैं, इसलिए गैर-नातेदार दाता को भी वृक्क प्रतिरोपण के लिए अनुज्ञात किया जा सकता है ।

इस रिट याचिका में विरोधी पक्षकारों को, विशेषकर विरोधी पक्षकार सं. 3 अर्थात् अधीक्षक, एस. सी. बी. मेडिकल कालेज और अस्पताल कटक को यह निर्देश दिया गया है कि वे मानव अंगों और ऊतकों का प्रतिरोपण अधिनियम, 1994 के अधीन गठित राज्य स्तरीय प्राधिकार समिति अर्थात् विरोधी पक्षकार सं. 2 के समक्ष याची का आवेदन विहित प्ररूप में वृक्क प्रतिरोपण हेतु को विचार के लिए अग्रप्रेषित करें । अनावश्यक तथ्यों के उल्लेख से बचते हुए, अभिवाक् से यह प्रतीत होता

है कि याची वृक्क रोग से ग्रसित है और उसे वृक्क के प्रतिरोपण की तत्काल आवश्यकता है । यह भी प्रतीत होता है कि वह किसी ऐसे अंगदाता की व्यवस्था नहीं कर सकता जो उसका सीधा नातेदार हो और वास्तव में उसने विरोधी पक्षकार सं. 4 से सहमति प्राप्त की है जो कि गैर-नातेदार दाता है । याची ने इस गैर-नातेदार दाता को अधीक्षक, एस. सी. बी. मेडिकल कालेज और अस्पताल, कटक के समक्ष सत्यापन और जांच के लिए प्रस्तुत किया है किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि उसे इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि याची और प्रस्तावित दाता नातेदार नहीं है । इस पर कोई विवाद नहीं है कि अधीक्षक, एस. सी. बी. मेडिकल कालेज और अस्पताल, कटक को मानव अंगों का प्रतिरोपण नियम, 1995 के अधीन रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र जारी किया गया है और यद्यपि यह रजिस्ट्रीकरण अधीक्षक, एस. सी. बी. मेडिकल कालेज और अस्पताल, कटक के पक्ष में जारी किया गया है जिसके खंड-1 में "केवल नातेदार के प्रतिरोपण के लिए" अधिरोपित किया गया है । चूंकि विरोधी पक्षकार सं. 4 अर्थात् याची का प्रस्तावित दाता याची का नातेदार नहीं है, इसलिए अधीक्षक, एस. सी. बी. मेडिकल कालेज और अस्पताल, कटक के पक्ष में जारी किए गए रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र के निबंधनों के आधार पर वे ऐसे मामलों को राज्य स्तरीय प्राधिकार समिति (विरोधी पक्षकार सं. 2) को अग्रप्रेषित करने के लिए अनुज्ञात नहीं है । मेडिकल कालेज के इसी आदेश से व्यथित होकर याचिका फाइल की गई । याचिका मंजूर करते है,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय ने 2013 की रिट याचिका सं. 13087 (जिसका निपटारा 31 जुलाई, 2013 को किया गया था) मानव अंगों का प्रतिरोपण नियम, 1995 के अधीन प्रदत्त प्रमाणपत्र के खंड 1 में उल्लिखित शर्त पर विचार किया है । उक्त नियम का नियम 4(ड़), नियम 4(क)(4) के अधीन यह उपबंधित है कि मानव अंगों का प्रतिरोपण नियम, 1995 के अधीन प्रदत्त प्रमाणपत्र के खंड 1 में उल्लिखित शब्द "केवल नातेदार के प्रतिरोपण के लिए" रजिस्ट्रीकरण

प्रमाणपत्र से हटा दिए गए हैं । सभी पहलुओं को दृष्टिगत करते हुए इस न्यायालय ने उपरोक्त रिट याचिका और कुछ अन्य रिट याचिकाओं में गैर-नातेदार दाता को भी वृक्क प्रतिरोपण के लिए अनुज्ञात किया है । इन सभी तथ्यों और याची के वृक्क के प्रतिरोपण संबंधी याचिका में किए गए कथन की आपातकालीन स्थिति पर विचार करने पर विरोधी पक्षकार सं. 3 अर्थात् अधीक्षक एस. सी. बी. मेडिकल कालेज और अस्पताल, कटक को निदेश दिया जाता है कि वे दाता का मूल्यांकन करे जिसके समक्ष याची उसे आज से दो सप्ताह के भीतर इस आदेश की अभिप्रमाणित प्रति के साथ प्रस्तुत करे । इस प्राप्ति के आधार पर दाता के मामले पर मानव अंग और ऊतक प्रतिरोपण अधिनियम, 1994 तथा मानव अंग नियम, 1995 के निबंधनों में गंभीरता से मूल्यांकन किया जाएगा और याची के आवेदन को राज्य स्तरीय प्राधिकार समिति (विरोधी पक्षकार सं. 2) को विचार हेतु तत्काल अग्रप्रेषित किया जाएगा । प्राधिकार समिति अनुज्ञा मंजूर किए जाने और याची के मामले पर सुनवाई अधीक्षक, एस. सी. बी. मेडिकल कालेज और अस्पताल, कटक (विरोधी पक्षकार सं. 3) से आवेदन की प्राप्ति की तारीख से 4 सप्ताह की अवधि के भीतर विधि के अधीन अपेक्षित सभी पहलुओं पर विचार करने के लिए स्वतंत्र है । (पैरा 9 और 10)

सिविल रिट अधिकारिता : 2021 की सिविल रिट याचिका सं. 31823.

संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से	श्री सत्य नारायण मिश्रा
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री एस. एस. कानूनगो (अपर सरकारी अधिवक्ता)

आदेश

इस मामले की सुनवाई वर्चुअल (आभासी) और भौतिक दोनों प्रकार से की गई है ।

2. यद्यपि यह मामला आज सुनवाई के लिए सूचीबद्ध नहीं किया

गया था किंतु याची के विद्वान् काउंसेल श्री सत्यनारायण मिश्रा द्वारा आपातकालीन रूप से निवेदन किए जाने पर मामले की सुनवाई विशेष सूची के अनुसार की जा रही है ।

3. श्रीमती उर्मिला माउंटा (अंगदाता) ने, जो विरोधी पक्षकार सं. 4 है, अधिवक्ता श्री प्रसन्न नंदा के माध्यम से आज न्यायालय में शपथ-पत्र फाइल किया है जिसमें उसने याची को अपना वृक्क दान करने की इच्छा व्यक्त की है । आज विरोधी पक्षकार सं. 4 द्वारा न्यायालय में फाइल किए गए वकालतनामे और शपथ-पत्र को अभिलेख पर रखा जाए ।

4. याची की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री सत्यनारायण मिश्रा, राज्य की ओर से विद्वान् अपर सरकारी अधिवक्ता और विरोधी पक्षकार सं. 4 (जो याची की सास है) की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री प्रसन्न नंदा की सुनवाई की गई है ।

5. इस रिट याचिका में विरोधी पक्षकारों को, विशेषकर विरोधी पक्षकार सं. 3 अर्थात् अधीक्षक, एस. सी. बी. मेडिकल कालेज और अस्पताल कटक को यह निर्देश दिया गया है कि वे मानव अंगों और ऊतकों का प्रतिरोपण अधिनियम, 1994 के अधीन गठित राज्य स्तरीय प्राधिकार समिति अर्थात् विरोधी पक्षकार सं. 2 के समक्ष याची का आवेदन विहित प्ररूप में वृक्क प्रतिरोपण हेतु को विचार के लिए अग्रप्रेषित करें ।

6. अनावश्यक तथ्यों के उल्लेख से बचते हुए, अभिवाक् से यह प्रतीत होता है कि याची वृक्क रोग से ग्रसित है और उसे वृक्क के प्रतिरोपण की तत्काल आवश्यकता है । यह भी प्रतीत होता है कि वह किसी ऐसे अंगदाता की व्यवस्था नहीं कर सकता जो उसका सीधा नातेदार हो और वास्तव में उसने विरोधी पक्षकार सं. 4 से सहमति प्राप्त की है जो कि गैर-नातेदार दाता है । याची ने इस गैर-नातेदार दाता को अधीक्षक, एस. सी. बी. मेडिकल कालेज और अस्पताल, कटक के समक्ष सत्यापन और जांच के लिए प्रस्तुत किया है किंतु ऐसा प्रतीत होता है

कि उसे इस आधार पर खारिज कर दिया गया है कि याची और प्रस्तावित दाता नातेदार नहीं है ।

7. इस पर कोई विवाद नहीं है कि अधीक्षक, एस. सी. बी. मेडिकल कालेज और अस्पताल, कटक को मानव अंगों का प्रतिरोपण नियम, 1995 के अधीन रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र जारी किया गया है और यद्यपि यह रजिस्ट्रीकरण अधीक्षक, एस. सी. बी. मेडिकल कालेज और अस्पताल, कटक के पक्ष में जारी किया गया है जिसके खंड-1 में "केवल नातेदार के प्रतिरोपण के लिए" अधिरोपित किया गया है ।

8. चूंकि विरोधी पक्षकार सं. 4 अर्थात् याची का प्रस्तावित दाता याची का नातेदार नहीं है, इसलिए अधीक्षक, एस. सी. बी. मेडिकल कालेज और अस्पताल, कटक के पक्ष में जारी किए गए रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र के निबंधनों के आधार पर वे ऐसे मामलों को राज्य स्तरीय प्राधिकार समिति (विरोधी पक्षकार सं. 2) को अग्रप्रेषित करने के लिए अनुज्ञात नहीं है ।

9. इस न्यायालय ने 2013 की रिट याचिका सं. 13087 (जिसका निपटारा 31 जुलाई, 2013 को किया गया था) मानव अंगों का प्रतिरोपण नियम, 1995 के अधीन प्रदत्त प्रमाणपत्र के खंड 1 में उल्लिखित शर्त पर विचार किया है । उक्त नियम का नियम 4(ड़), नियम 4(क)(4) के अधीन यह उपबंधित है कि मानव अंगों का प्रतिरोपण नियम, 1995 के अधीन प्रदत्त प्रमाणपत्र के खंड 1 में उल्लिखित शब्द "केवल नातेदार के प्रतिरोपण के लिए" रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र से हटा दिए गए हैं । सभी पहलुओं को दृष्टिगत करते हुए इस न्यायालय ने उपरोक्त रिट याचिका और कुछ अन्य रिट याचिकाओं में गैर-नातेदार दाता को भी वृक्क प्रतिरोपण के लिए अनुज्ञात किया है ।

10. इन सभी तथ्यों और याची के वृक्क के प्रतिरोपण संबंधी याचिका में किए गए कथन की आपातकालीन स्थिति पर विचार करने पर विरोधी पक्षकार सं. 3 अर्थात् अधीक्षक एस. सी. बी. मेडिकल कालेज

और अस्पताल, कटक को निदेश दिया जाता है कि वे दाता का मूल्यांकन करे जिसके समक्ष याची उसे आज से दो सप्ताह के भीतर इस आदेश की अभिप्रमाणित प्रति के साथ प्रस्तुत करे । इस प्राप्ति के आधार पर दाता के मामले पर मानव अंग और ऊतक प्रतिरोपण अधिनियम, 1994 तथा मानव अंग नियम, 1995 के निबंधनों में गंभीरता से मूल्यांकन किया जाएगा और याची के आवेदन को राज्य स्तरीय प्राधिकार समिति (विरोधी पक्षकार सं. 2) को विचार हेतु तत्काल अग्रप्रेषित किया जाएगा । प्राधिकार समिति अनुज्ञा मंजूर किए जाने और याची के मामले पर सुनवाई अधीक्षक, एस. सी. बी. मेडिकल कालेज और अस्पताल, कटक (विरोधी पक्षकार सं. 3) से आवेदन की प्राप्ति की तारीख से 4 सप्ताह की अवधि के भीतर विधि के अधीन अपेक्षित सभी पहलुओं पर विचार करने के लिए स्वतंत्र है ।

11. उपरोक्त मताभिव्यक्तियों और निदेशों के साथ इस रिट याचिका का निपटारा किया जाता है ।

12. इस आदेश की प्रमाणित प्रति नियमानुसार तत्काल उपलब्ध कराई जाए ।

13. इस आदेश की एक प्रति आवश्यक अनुपालन और संसूचना के लिए विद्वान् अपर सरकारी अधिवक्ता को उपलब्ध कराई जाए ।

याचिका मंजूर की गई ।

अस.

पी. सिम्हाचलम्

बनाम

यशोदा

(2020 की प्रथम अपील सं. 2)

तारीख 19 जून, 2021

मुख्य न्यायमूर्ति (कार्यकारी) राजेश बिन्दल और न्यायमूर्ति अरिजीत बनर्जी

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(1)(i-क) – विवाह-विच्छेद – मानसिक क्रूरता – यदि पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध गाली-गलौज और कठोर व्यवहार निरंतर किया जाता है तब ऐसे कृत्य को मानसिक क्रूरता की कोटि में रखा जा सकता है ।

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 – धारा 13(1)(i-क) – विवाह-विच्छेद – मानसिक क्रूरता का मूल्यांकन – पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध पुलिस में शिकायत दर्ज करते हुए व्यभिचार का आरोप लगाया जाना – साक्ष्य का अभाव – पत्नी द्वारा दूसरे पक्षकार पर व्यभिचार का आरोप लगाया जाता है जो साक्ष्य के अभाव में साबित नहीं हो पाया है और पुत्री द्वारा भी आरोप का खण्डन किया जाता है, ऐसी स्थिति में भारतीय समाज की दृष्टि से आरोप लगाने के इस कृत्य को मानसिक क्रूरता की कोटि में रखा जा सकता है ।

ये दोनों अपीलें 2017 के वाद 11 में कुटुंब न्यायालय, पोर्ट ब्लेयर द्वारा तारीख 10 जनवरी, 2020 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई हैं । 2020 की प्रथम अपील सं. 2 वादी/पति की ओर से, विवाह विघटन के लिए की गई प्रार्थना के खारिज किए जाने के विरुद्ध फाइल की गई है । 2021 की प्रथम अपील सं. 2 निचले न्यायालय निर्णय के उस भाग के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके अनुसार प्रतिवादी/पत्नी का दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए किया गया

प्रतिदावा मंजूर किया गया । दोनों अपीलों की सुनवाई और निपटारा एक साथ किया गया क्योंकि ये अपीलें एक ही निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई हैं और इनमें तथ्य और विधि का एक ही प्रश्न अन्तर्वलित है । वादी का पक्षकथन, जैसाकि वादपत्र में अभिवाक् किया गया है यह है कि वादी और प्रतिवादी दोनों हिन्दू हैं और उनका विवाह 16 मई, 1990 को हिन्दू रीति-रिवाज के अनुसार हुआ था । यह विवाह जिला श्रीकाकूलम, आंध्र प्रदेश में अनुष्ठापित हुआ था । उस समय वादी बेरोजगार था । विवाह के पश्चात्, पति-पत्नी पोर्ट ब्लेयर स्थित प्रतिवादी के माता-पिता के मकान में रहने लगे । वहां रहने के दौरान प्रतिवादी और उसके माता-पिता ने सदैव वादी के साथ दुर्व्यवहार किया । छह मास पश्चात्, पोर्ट ब्लेयर में रहने के दौरान वादी को उसके ससुरालवालों द्वारा बुरी तरह पीटा गया । प्रतिवादी-पत्नी ने इस घटना को देखकर कोई भी आक्षेप नहीं किया । इसके पश्चात् वादी पति अपने माता-पिता के यहां पोर्ट ब्लेयर के बाहर चला गया । कुछ दिनों पश्चात्, वादी को प्रतिवादी की ओर से इस संबंध में एक पत्र प्राप्त हुआ कि प्रतिवादी और उसके माता-पिता अपने कृत्यों के लिए खेद व्यक्त करते हैं और उन्होंने वादी से वापस पोर्ट ब्लेयर आने को कहा । प्रतिवादी भी वादी के साथ पोर्ट ब्लेयर में किराए के मकान में अलग रहने के लिए तैयार हो गई । तद्नुसार, मई, 1991 में वादी आंध्र प्रदेश से पोर्ट ब्लेयर आ गया और डेयरी फार्म में एक किराए के मकान में प्रतिवादी के साथ रहने लगा । वर्ष 1992 में वादी केन्द्रीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पोर्ट ब्लेयर में अस्थायी मजदूर के रूप में नियोजित हो गया और वादी अभी तक इसी रूप में कार्यरत है । जनवरी, 1996 को इस दम्पत्ति के यहां एक पुत्री ने जन्म लिया जिसका नाम ज्योति प्रिया है । 3 जनवरी, 2001 को उनके यहां एक और पुत्री ने जन्म लिया जिसका नाम पी. चांदनी प्रिया है । प्रतिवादी सदैव वादी के साथ झगड़ा करती थी । प्रतिवादी की ओर से वित्तीय खर्चों को लेकर परिवार का कोई सहयोग नहीं किया गया जबकि वह अध्यापिका होने के नाते वादी से अधिक अर्जित करती थी । प्रतिवादी ने वादी को बताए बिना अपना वैवाहिक गृह छोड़ दिया और वह अपनी पुत्री ज्योति प्रिया और सामान लेकर वहां से चली गई और अभी

इस प्रक्रम पर उसकी दूसरी पुत्री का जन्म नहीं हुआ था । वादी ने इस मामले की रिपोर्ट डेयरी फार्म की पंचायत में दर्ज कराई । इसके पश्चात् पंचायत की बैठक बिठाई गई । प्रतिवादी वादी के साथ नव-निर्मित मकान में तब तक रहने के लिए तैयार हो गई जब तक उसका भाई वहां नहीं रह रहा था । प्रतिवादी ने कभी भी परिवार की जिम्मेदारियों को पूरा करने में भाग नहीं लिया । प्रतिवादी सदैव वादी को गालियां देती रहती थी और पारिवारिक कार्यों को अनदेखा करती थी । प्रतिवादी वादी को बताए बिना अपने माता-पिता को धनराशि दिया करती थी । प्रतिवादी को सदैव वादी के चरित्र पर संदेह रहता था । दूसरे बच्चे के जन्म के पश्चात् पति-पत्नी के बीच विवाद और बढ़ गया । प्रतिवादी अपने माता-पिता के साथ रहना चाहती थी किंतु वादी पति इसके लिए सहमत नहीं था । अप्रैल, 2001 से प्रतिवादी ने वादी के साथ किसी भी प्रकार का शारीरिक संबंध बनाने से इनकार कर दिया था । प्रतिवादी को वादी के परिवार के किसी भी सदस्य का उनके घर पर आना पसंद नहीं था । जब कभी ऐसा कोई नातेदार आता था तब प्रतिवादी उनसे झगड़ा किया करती थी । तारीख 31 अक्तूबर, 2010 को प्रतिवादी पत्नी ने घर में लड़ाई-झगड़ा करने के पश्चात् वादी का अभित्यजन किया । इसके पश्चात्, प्रतिवादी ने कई न्यायालयों में वादी के विरुद्ध शिकायतें फाइल करके कई मामलों में आलिप्त करने का प्रयास किया जिससे वादी के साथ मानसिक क्रूरता कारित की गई । वादी के मकान में उसके साथ दो बच्चे रहते हैं । प्रतिवादी के व्यवहार के कारण बच्चों ने अपनी मां (प्रतिवादी) के साथ रहने से इनकार कर दिया । प्रतिवादी और उसके भाई ने अपने दोस्तों और नातेदारों के सामने दो बार वादी की पिटाई की है जिससे वादी को घोर मानसिक आघात पहुंचा है । वादी प्रतिवादी के साथ रहने में इच्छुक नहीं है क्योंकि प्रतिवादी ने वादी को अभित्यजित कर दिया है । वादी के साथ प्रतिवादी द्वारा की गई क्रूरता की कोटि अत्यंत गंभीर है जो विवाह-विच्छेद का वाद चलाए जाने के लिए पर्याप्त है । प्रतिवादी का ऐसा घंमडी और अहंकारी व्यवहार के कारणवश वादी ने प्रतिवादी से सदैव अलग रहने का विनिश्चय किया है । प्रतिवादी कभी भी वादी के साथ अनुकूल नहीं हो सकी । दोनों पक्षकारों के बीच

पुनर्मिलाप की कोई संभावना नहीं है । प्रतिवादी द्‌वारा फाइल किए गए लिखित कथन के अनुसार उसका पक्षकथन और प्रतिदावा इस प्रकार है कि विवाह के पश्चात् वादी के पोर्ट ब्लेयर के वापस आने के समय वह प्रतिवादी के माता-पिता के यहां रहने लगा । वह और उसका पति वास्तव में हड्‌डो स्थित किराए के मकान में रहते थे और दो वर्ष पश्चात् वे डेयरी फार्म स्थित किराए के मकान में स्थानांतरित हो गए । प्रतिवादी ने निश्चित रूप से वाद में किए गए सभी महत्वपूर्ण अभिकथनों से इनकार किया है । प्रतिवादी पत्नी ने यह भी कथन किया है कि पति-पत्नी के बीच आरंभ से ही संबंध सौहार्द नहीं थे क्योंकि वादी मजदूर होने और प्रतिवादी अध्यापिका होने के कारण हीन भावना से ग्रसित था । इसी हीन भावना के कारण वादी किराया प्रतिवादी को गालियां देता था । वादी पर्याय प्रतिवादी से अत्यधिक धनराशि की मांग किया करता था और इसके साथ मारपीट भी करता था । वादी पति प्रतिवादी पत्नी से उसके वेतन की पूरी राशि ले लेता था और अपनी इच्छानुसार उसका प्रयोग करता था । यहां तक कि बस के किराए के लिए प्रतिवादी पत्नी वादी से पैसे मांगा करती थी । प्रतिवादी के गर्भवती होने के कारण और उसके प्रथम प्रसव के पश्चात् भी वादी ने हीन भावना के कारण प्रतिवादी के साथ दुर्व्यवहार किया क्योंकि प्रतिवादी वादी से अधिक धर्नाजन करती थी । वादी के माता-पिता और नातेदार पर्याय दोनों पक्षों के मामले में हस्तक्षेप किया करते थे । उन्होंने पर्याय वादी से पैसा भेजने को कहा किंतु वादी ने इसके जवाब में प्रतिवादी को विवश किया कि वह अपने भाइयों से पैसा मांगे ताकि वह पैसा वादी के नातेदारों को भेजा जा सके । दूसरे बच्चे के जन्म के पश्चात् वादी प्रतिवादी को यह बताने लगा कि दोबारा पुत्री का जन्म होने से उसके परिवार पर अतिरिक्त बोझ आ गया है और प्रतिवादी को कई अवसरों पर बाहर के लोगों की उपस्थिति में पूरी तरह गालियां दी गईं । प्रतिवादी ने कभी भी वादी के साथ शारीरिक संबंध बनाने से इनकार नहीं किया । प्रतिवादी ने वादी का अभित्यजन नहीं किया और वह तो पहले ही उसके साथ रहने को तैयार है । उसे अपने बच्चों और वादी से कभी भी शत्रुता नहीं थी और उसने पुनर्मिलाप का प्रत्येक प्रयास

किया । तारीख 31 अक्तूबर, 2010 को वादी ने प्रतिवादी को कुछ दस्तावेज दिए और उसने प्रतिवादी को उन पर हस्ताक्षर करने हेतु विवश किया । प्रतिवादी ने उन दस्तावेज को पढ़ने के पश्चात् आश्चर्यचकित होकर यह निष्कर्ष निकाला कि वे दस्तावेज बौंड पेपर पर टंकित किए हुए विवाह-विच्छेद करार से संबंधित हैं । वादी से यह पूछने पर कि वह विवाह-विच्छेद क्यों चाहता है इस पर वादी ने उत्तर दिया कि उसका मुख्य उद्देश्य और सपना यह था कि उसका अपना मकान हो जो कि प्रतिवादी की आय से पूरा हो चुका है, इसलिए उसे उसके जीवन में अब प्रतिवादी की आवश्यकता नहीं है । प्रतिवादी द्वारा विवाह-विच्छेद के कागजों पर हस्ताक्षर करने से इनकार करने पर वादी ने निर्दयतापूर्वक प्रतिवादी पर हमला किया और उसे घर से बाहर निकाल दिया । दोनों पुत्रियों को वादी द्वारा यह धमकी दी गई कि वे प्रतिवादी के साथ न रहे । मामले को आपस में सुलझाने के लिए प्रतिवादी ने महिला पुलिस थाने में रिपोर्ट दर्ज कराई और वादी को तारीख 2 नवंबर, 2010 को बुलाया गया किंतु समझौता नहीं हो सका । तारीख 8 नवंबर, 2010 को वादी और पुत्रियां पुन: महिला पुलिस थाने गई जहां प्रतिवादी भी मौजूद थी । पुत्रियों ने प्रतिवादी को बताया कि वादी ने उन्हें यह धमकी दी है कि यदि वे अपनी माता से बात करेंगी या किसी भी प्रकार का कोई संबंध रखेंगी तो वादी प्रतिवादी की हत्या कर देगा । प्रतिवादी ने स्थानीय पंचायत और समाज कल्याण बोर्ड के अध्यक्ष से वैवाहिक विवाद को आपस में निपटाने हेतु संपर्क किया । किंतु कुछ नहीं हो सका । प्रतिवादी, वादी के साथ रहने के लिए पूरी तरह चुप है और वह 19 वर्ष के वैवाहिक बंधन को तोड़ना नहीं चाहती है । घर में वादी और पुत्रियों, जो अभी किशोरावस्था में हैं, के साथ-साथ प्रतिवादी-पत्नी का मौजूद होना भी आवश्यक है क्योंकि बच्चों को माता और पिता दोनों की आवश्यकता होती है । दोनों पुत्रियों के उज्जवल भविष्य के लिए पारिवारिक जीवन बेहतर होना चाहिए और इस प्रकार प्रतिवादी, वादी के साथ वास करना चाहती है ताकि समाज में पारिवारिक मर्यादा और सम्मान बना रहे और पुत्रियों का भविष्य प्रभावित न हो । वर्तमान मामले में तय किए जाने के लिए मुख्य प्रश्न यह है कि क्या वादी यह

सिद्ध कर पाया है कि उसके साथ प्रतिवादी द्वारा क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया गया था । यदि वह ऐसा करने में सफल हो गया है तब वह विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने का हकदार है और प्रतिवादी दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन हेतु डिक्री पाने की हकदार नहीं होगी । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि वादी अपना पक्षकथन सिद्ध नहीं कर सका है और उसके विवाह-विच्छेद की प्रार्थना खारिज की गई है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने प्रतिवादी के इस पक्षकथन को स्वीकार किया है कि प्रतिवादी ने उसका अभित्यजन करके गलत किया है । जबकि उसके साथ रहने के लिए पहले से इच्छुक थी और तद्नुसार न्यायालय ने प्रतिवादी की दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए की गई प्रार्थना मंजूर कर ली । कुटुम्ब न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी पति ने दो अपीलें फाइल की । अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – "क्रूरता", जैसाकि उक्त अधिनियम की धारा 13(1)(iक) के अधीन अनुध्यात है, शारीरिक और मानसिक के आधार पर आशयित और निराशयित दोनों प्रकार की हो सकती है । यदि शारीरिक क्रूरता कारित की गई है, तथ्य और कोटि का प्रश्न सामने आता है । यदि मानसिक क्रूरता कारित की गई है तब यह जांच की जानी चाहिए कि क्रूरतापूर्ण आचरण किस प्रकृति का है और इसके पश्चात् ऐसे आचरण से पति या पत्नी के मन पर कितना प्रभाव पड़ा है । ऐसे आचरण से पति-पत्नी का एक-दूसरे के साथ रहना हानिकारक है या नहीं, यह प्रश्न आचरण की प्रकृति और उसका दूसरे जीवनसाथी पर पड़ने वाले प्रभाव को ध्यान में रखते हुए ही तय किया जा सकता है । क्रूरता गठित करने के लिए जिस कृत्य की सिफारिश की गई है वह इतना गंभीर होना चाहिए कि उससे यही निष्कर्ष निकले कि अर्जीदार पति या पत्नी से युक्तियुक्त रूप से यह प्रत्याशा न की जा सके कि वह अपने जीवनसाथी के साथ रह सके । तथापि, क्रूरता का अर्थ वैवाहिक जीवन की सामान्य नोंकझोंक से अधिक गंभीर है । उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट रूप से यह उद्भूत होता है कि "मानसिक क्रूरता" या "शारीरिक क्रूरता" की ऐसी संक्षिप्त परिभाषा नहीं दी जा सकती जिसका सार्वत्रिक रूप से प्रयोग की

जा सके । तथापि, शारीरिक क्रूरता में शारीरिक यातना का तत्व होता है जबकि मानसिक क्रूरता केवल भावात्मक कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है मानसिक क्रूरता का अर्थ पति-पत्नी द्‌वारा एक-दूसरे को शब्दों या आचरण से मानसिक यातना पहुंचाना है । यह यातना ऐसी होनी चाहिए जिससे व्यथित पक्षकार के बीच वैवाहिक संबंध जारी रखना असंभव हो जाए । यह निश्चित करना असंभव होगा कि एक पक्षकार के किस प्रकार के शब्द या उसका किस प्रकार का आचरण दूसरे पक्षकार के प्रति मानसिक क्रूरता की कोटि में आएगा । तथ्यों के आधार पर यह आकलन करना होगा कि क्या एक पक्षकार के आचरण से दूसरे पक्षकार को मानसिक क्रूरता कारित होती है या नहीं । एक पक्षकार (पति या पत्नी) ने दूसरे पक्षकार के साथ मानसिक क्रूरता कारित की है या नहीं, यह सुनिश्चित करने के लिए पक्षकारों के सामाजिक स्तर, उनकी शैक्षणिक योग्यता और उनका समाज में परिचालन जैसे कारकों पर विचार करना होगा । एक पक्षकार के आचरण द्‌वारा दूसरे पक्षकार के मन में पीड़ा, निराशा और कुंठा का भाव पैदा होना आम तौर पर अभिकथित मानसिक क्रूरता का कारण बनता है । इस सीमा तक यह कहा जा सकता है कि मानसिक क्रूरता मन की स्थिति है जो व्यक्तिपरक है । तथापि, व्यथित पक्षकार दूसरे पक्षकार द्‌वारा कारित मानसिक क्रूरता साबित कर पाए या न कर पाए । इसका निर्धारण उन तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए निष्पक्ष रूप से किया जाना चाहिए जिनमें दोनों पक्षकार अर्थात् पति-पत्नी रहते हैं । यदि किसी प्रज्ञावान व्यक्ति को यह प्रतीत होता है कि एक पक्षकार का आचरण ऐसा है कि दूसरे पक्षकार से यह प्रत्याशा नहीं की जा सकती कि वह पहले पक्षकार के साथ वैवाहिक संबंध जारी रखे, तब यह कहा जा सकता है कि मानसिक क्रूरता कारित हुई है । स्वाभाविकत:, अचानक कभी घटित हुई किसी एक घटना के आधार पर पक्षकार के क्रूर व्यवहार को साबित नहीं किया जा सकता । अर्जीदार पक्षकार को यह दर्शित करना चाहिए कि उसे युक्तियुक्त समयावधि के दौरान मानसिक क्रूरता कारित की हुई और उससे उसे इतनी मानसिक पीड़ा पहुंची है कि वह दूसरे पक्षकार के साथ नहीं रह सकता । (पैरा 29 और 36)

अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होता है कि प्रत्यर्थी न केवल अपने बच्चों के सामने बल्कि बाहर के लोगों की मौजूदगी में अपीलार्थी के साथ अपमानजनक व्यवहार करती थी । अगर एक पक्षकार को निरंतर गालियां दी जाती हैं, दुर्व्यवहार किया जाता है और उससे यह कहा जाता है कि वह किसी काम का नहीं है तब ऐसा कृत्य मानसिक क्रूरता की कोटि में आएगा । अपीलार्थी ने यह भी दलील दी है कि प्रत्यर्थी ने सदैव उसके चरित्र पर संदेह किया है । वास्तव में, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से यह पता चलता है कि प्रत्यर्थी ने समाज कल्याण बोर्ड तथा पुलिस थाने जैसे कई फोरमों में उसके विरुद्ध शिकायतें दर्ज कराएं । इस प्रकार हमारे अनुसार यह भी मानसिक क्रूरता है । भारतीय समाज में किसी पत्नी या पति पर व्यभिचार का आरोप लगाना निश्चित रूप से दूसरे पक्षकार के प्रति क्रूरता की कोटि में आएगा । किसी भी मानव के लिए उसका चरित्र और उसकी प्रतिष्ठा दोनों अत्यंत महत्वपूर्ण हैं । कुछ ही कृत्य ऐसे होते हैं जिन्हें मिथ्या और सारहीन आधार पर पति या पत्नी के चरित्र पर आरोप लगाने से अधिक गंभीर हों । यह भी प्रतीत होता है कि अपीलार्थी के विरुद्ध प्रत्यर्थी द्वारा की गई शिकायत में पुलिस को कोई सच्चाई नहीं मिली और इसी कारण पुलिस ने इस शिकायत पर कोई कार्रवाई नहीं की । एक वैवाहिक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार के विरुद्ध मिथ्या शिकायत दर्ज कराना भी निश्चित रूप से मानसिक क्रूरता है । प्रत्यर्थी द्वारा विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए लिखित कथन अर्थात् अभिवाक् में भी प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के विरुद्ध ऐसे अभिकथन किए हैं जो अत्यंत अपमानजनक हैं । प्रत्यर्थी ने यह अभिकथन किया है कि अपीलार्थी प्रत्यर्थी का संपूर्ण वेतन ले लिया करता था और उसका उपयोग अपनी इच्छानुसार करता था । प्रत्यर्थी-पत्नी ने यह भी कथन किया है कि अपीलार्थी हीनभावना का शिकार था क्योंकि वह एक श्रमिक और प्रत्यर्थी अध्यापिका थी । प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपीलार्थी के विवाहेत्तर प्रेम-प्रसंग के संबंध में अभिकथन किया है। इनमें से कोई भी अभिकथन किसी भी स्वतंत्र साक्षी द्वारा सारभूत साबित नहीं किया गया है । इसके प्रतिकूल अभि. सा. 3 ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि अपीलार्थी किसी

भी अन्य महिला के साथ अन्तर्वलित नहीं था । प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा अपीलार्थी-पति के विरुद्ध किए गए ऐसे गंभीर और पूरी तरह मिथ्या अभिकथनों से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि प्रेम, स्नेह और विश्वास जिस पर वैवाहिक संबंध आधारित होता है और उसका अस्तित्व बना रहता है, घटते-घटते शून्य हो गया है । दोनों पक्षकारों के बीच न कोई प्रेम-भावना और न ही कोई लगाव प्रतीत होता है । यह विवादित नहीं है कि पक्षकार वर्ष 2010 से अलग-अलग रह रहे हैं । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का संचयी रूप से आकलन करने पर हमारा यह मत है कि यदि हमने अपीलार्थी द्वारा की गई विवाह-विच्छेद की प्रार्थना को मंजूर नहीं किया और दोनों पक्षकारों को एक साथ रहने के लिए विवश किया तो यह विवाह जैसे पवित्र बंधन का अपकार करना होगा । पक्षकार पहले से ही अलग-अलग रह रहे हैं । दोनों पक्षकारों के मन में एक-दूसरे के प्रति कटुता और शत्रुता की भावना उत्पन्न हो गई है । हमारा यह मत है कि दोनों पक्षकारों के हित में यह होगा कि उनका विवाह विघटित कर दिया जाए । यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि पक्षकारों की बड़ी पुत्री भी ऐसा ही महसूस करती है । जहां तक अपीलार्थी के साथ रहने और विवाह-बंधन को बनाए रखने संबंधी इच्छा को लेकर प्रत्यर्थी के अभिवाक् और साक्ष्य का संबंध है, हम इस बात से सहमत हैं कि प्रत्यर्थी के अभिवाक् और साक्ष्य में सच्चाई नहीं है । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से हमें यह विश्वास हो गया है कि अपीलार्थी के साथ वैवाहिक संबंध जारी रखने की प्रत्यर्थी की तथाकथित इच्छा एक बहाना है ताकि उसके आधार पर वह दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री प्राप्त कर सके । हम यह महसूस करते हैं कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने यह सब प्रतिशोधी हेतु के साथ केवल अपीलार्थी की मानसिक शांति भंग करने और उसको पीड़ा देने के लिए किया है जिसके लिए उसने अपनी मानसिक शांति भी भंग की है । जहां तक दोनों पुत्रियों, जो अब वयस्क हैं, के कल्याण का संबंध है वे अपने भविष्य को बनाने में व्यस्त हैं । वर्तमान में, दोनों में से कोई भी पुत्री अपने माता-पिता के साथ नहीं रहती है । किसी भी स्थिति में यह कहा जा सकता है कि दोनों पक्षकार लगभग 11 वर्षों से अलग-अलग रह रहे

हैं । हमारा यह निष्कर्ष है कि इन पुत्रियों के माता-पिता का विधिक पृथक्करण करने से उनके कल्याण पर कोई भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा । विवाह एक ऐसा बंधन है जिसमें पुरुष और स्त्री पारिवारिक जीवन बिताते हैं । यह प्रत्याशा की जाती है कि यह बंधन इतना स्थायी होता है कि उसमें पुरुष और स्त्री को सामाजिक रूप से साथ-साथ रहने के लिए अनुज्ञात किया जाता है । "विवाह" शब्द विधिक संविदा या सिविल स्टेटस (नागरिक हैसियत) या धार्मिक रीति अथवा सामाजिक प्रथा को निर्दिष्ट करता है । वास्तव में विवाह योग्य पुरुष और स्त्री द्वारा एक साथ जीवन बिताने का नाम विवाह है । परस्पर प्रेम, स्नेह और सम्मान सफल विवाह के मूल आधार हैं । जिस प्रकार एक मकान बिना नींव और स्तंभ के ढाह जाता है उसी प्रकार प्रेम, स्नेह और सम्मान के बिना विवाह कायम नहीं रह सकता और पक्षकार एक-दूसरे की चिंता करना छोड़ देते हैं । ऐसे मामले में वैवाहिक बंधन एक दिखावा बनकर रह जाता है जो केवल कागजों में ही दिखाई देता है । हमारी राय में वर्तमान मामला ऐसा ही है । पक्षकारों को निश्चित रूप से एक-दूसरे के प्रति कोई भी सकारात्मक लगाव नहीं है । उन्होंने काफी लंबे समय से एक-दूसरे की चिंता करना छोड़ दिया है । विवाह केवल नाम-मात्र रह गया है । ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि दोनों पक्षकार पुन: एक-दूसरे के साथ रह सकते हैं । इन परिस्थितियों में विवाह असाध्य रूप से विघटित हो चुका है और अब ऐसी स्थिति में विवाह-बंधन बनाए रखने हेतु निदेश देने का अर्थ दोनों पक्षकारों विशेषकर अपीलार्थी की पीड़ा काल को और बढ़ाना होगा । (पैरा 39, 40, 41, 43 और 44)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2007]	(2007) 4 एस. सी. सी. 511 = ए. आई. आर. ऑनलाइन 2007 एस. सी. 347 : **समर घोष** बनाम **जया घोष** ;	33
[2006]	(2006) 4 एस. सी. सी. 558 = ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 1675 : **नवीन कोहली** बनाम **नीलू कोहली** ;	27, 32

[2005]	(2005) 2 एस. सी. सी. 22 = ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 534 : **ए. जयचंद्र** बनाम **अनील कौर** ;	29, 32
[2003]	(2003) 6 एस. सी. सी. 334 = ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 2462 : **विजयकुमार रामचंद्र भाटे** बनाम **नीला विजयकुमार भाटे** ;	34
[2002]	(2002) 2 एस. सी. सी. 296 = ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 576 : **जी. वी. एन. कामेश्वर राव** बनाम **जी. जबिल्ली** ;	33
[2002]	(2002) 5 एस. सी. सी. 706 = ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 2582 : **परवीन मेहता** बनाम **इंदरजीत मेहता** ;	31
[1994]	(1994) 1 एस. सी. सी. 337 = ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 710 : **वी. भगत** बनाम **डी. भगत** ;	30
[1988]	(1988) 1 एस. सी. सी. 105 = ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 121 : **शोभा रानी** बनाम **मधुकर रेड्डी** ।	28

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2020 की प्रथम अपील सं. 2.

2017 के वाद 11 में कुटुंब न्यायालय, पोर्ट ब्लेयर द्वारा तारीख 10 जनवरी, 2020 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपीलें ।

अपीलार्थी की ओर से सुश्री अंजलि नाग

प्रत्यर्थी की ओर से श्री कृष्णा राव

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अरिजीत बनर्जी ने दिया ।

न्या. बनर्जी – ये दोनों अपीलें 2017 के वाद 11 में कुटुंब न्यायालय, पोर्ट ब्लेयर द्वारा तारीख 10 जनवरी, 2020 को पारित

निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई हैं । 2020 की प्रथम अपील सं. 2 वादी/पति की ओर से, विवाह विघटन के लिए की गई प्रार्थना के खारिज किए जाने के विरुद्ध फाइल की गई है । 2021 की प्रथम अपील सं. 2 निचले न्यायालय निर्णय के उस भाग के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके अनुसार प्रतिवादी/पत्नी का दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए किया गया प्रतिदावा मंजूर किया गया । दोनों अपीलों की सुनवाई और निपटारा एक साथ किया गया क्योंकि ये अपीलें एक ही निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई हैं और इनमें तथ्य और विधि का एक ही प्रश्न अन्तर्वलित है ।

वादी/अपीलार्थी का पक्षकथन :

2. वादी का पक्षकथन, जैसाकि वादपत्र में अभिवाक् किया गया है यह है कि वादी और प्रतिवादी दोनों हिन्दू हैं और उनका विवाह 16 मई, 1990 को हिन्दू रीति-रिवाज के अनुसार हुआ था । यह विवाह जिला श्रीकाकूलम, आंध्र प्रदेश में अनुष्ठापित हुआ था । उस समय वादी बेरोजगार था । विवाह के पश्चात्, पति-पत्नी पोर्ट ब्लेयर स्थित प्रतिवादी के माता-पिता के मकान में रहने लगे । वहां रहने के दौरान प्रतिवादी और उसके माता-पिता ने सदैव वादी के साथ दुर्व्यवहार किया । छह मास पश्चात्, पोर्ट ब्लेयर में रहने के दौरान वादी को उसके ससुरालवालों द्वारा बुरी तरह पीटा गया । प्रतिवादी-पत्नी ने इस घटना को देखकर कोई भी आक्षेप नहीं किया । इसके पश्चात् वादी पति अपने माता-पिता के यहां पोर्ट ब्लेयर के बाहर चला गया ।

3. कुछ दिनों पश्चात्, वादी को प्रतिवादी की ओर से इस संबंध में एक पत्र प्राप्त हुआ कि प्रतिवादी और उसके माता-पिता अपने कृत्यों के लिए खेद व्यक्त करते हैं और उन्होंने वादी से वापस पोर्ट ब्लेयर आने को कहा । प्रतिवादी भी वादी के साथ पोर्ट ब्लेयर में किराए के मकान में अलग रहने के लिए तैयार हो गई । तद्नुसार, मई, 1991 में वादी आंध्र प्रदेश से पोर्ट ब्लेयर आ गया और डेयरी फार्म में एक किराए के मकान में प्रतिवादी के साथ रहने लगा । वर्ष 1992 में वादी केन्द्रीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पोर्ट ब्लेयर में अस्थायी मजदूर के रूप में नियोजित हो गया और वादी अभी तक इसी रूप में कार्यरत है ।

4. जनवरी, 1996 को इस दम्पत्ति के यहां एक पुत्री ने जन्म लिया जिसका नाम ज्योति प्रिया है । 3 जनवरी, 2001 को उनके यहां एक और पुत्री ने जन्म लिया जिसका नाम पी. चांदनी प्रिया है । प्रतिवादी सदैव वादी के साथ झगड़ा करती थी । प्रतिवादी की ओर से वित्तीय खर्चों को लेकर परिवार का कोई सहयोग नहीं किया गया जबकि वह अध्यापिका होने के नाते वादी से अधिक अर्जित करती थी ।

5. प्रतिवादी ने वादी को बताए बिना अपना वैवाहिक गृह छोड़ दिया और वह अपनी पुत्री ज्योति प्रिया और सामान लेकर वहां से चली गई और अभी इस प्रक्रम पर उसकी दूसरी पुत्री का जन्म नहीं हुआ था । वादी ने इस मामले की रिपोर्ट डेयरी फार्म की पंचायत में दर्ज कराई । इसके पश्चात् पंचायत की बैठक बिठाई गई । प्रतिवादी वादी के साथ नव-निर्मित मकान में तब तक रहने के लिए तैयार हो गई जब तक उसका भाई वहां नहीं रह रहा था । प्रतिवादी ने कभी भी परिवार की जिम्मेदारियों को पूरा करने में भाग नहीं लिया । प्रतिवादी सदैव वादी को गालियां देती रहती थी और पारिवारिक कार्यों को अनदेखा करती थी । प्रतिवादी वादी को बताए बिना अपने माता-पिता को धनराशि दिया करती थी । प्रतिवादी को सदैव वादी के चरित्र पर संदेह रहता था । दूसरे बच्चे के जन्म के पश्चात् पति-पत्नी के बीच विवाद और बढ़ गया । प्रतिवादी अपने माता-पिता के साथ रहना चाहती थी किंतु वादी पति इसके लिए सहमत नहीं था । अप्रैल, 2001 से प्रतिवादी ने वादी के साथ किसी भी प्रकार का शारीरिक संबंध बनाने से इनकार कर दिया था । प्रतिवादी को वादी के परिवार के किसी भी सदस्य का उनके घर पर आना पसंद नहीं था । जब कभी ऐसा कोई नातेदार आता था तब प्रतिवादी उनसे झगड़ा किया करती थी ।

6. तारीख 31 अक्तूबर, 2010 को प्रतिवादी पत्नी ने घर में लड़ाई-झगड़ा करने के पश्चात् वादी का अभित्यजन किया । इसके पश्चात्, प्रतिवादी ने कई न्यायालयों में वादी के विरुद्ध शिकायतें फाइल करके कई मामलों में आलिप्त करने का प्रयास किया जिससे वादी के साथ मानसिक क्रूरता कारित की गई ।

7. वादी के मकान में उसके साथ दो बच्चे रहते हैं । प्रतिवादी के

व्यवहार के कारण बच्चों ने अपनी मां (प्रतिवादी) के साथ रहने से इनकार कर दिया ।

8. प्रतिवादी और उसके भाई ने अपने दोस्तों और नातेदारों के सामने दो बार वादी की पिटाई की है जिससे वादी को घोर मानसिक आघात पहुंचा है ।

9. वादी प्रतिवादी के साथ रहने में इच्छुक नहीं है क्योंकि प्रतिवादी ने वादी को अभित्यजित कर दिया है । वादी के साथ प्रतिवादी द्वारा की गई क्रूरता की कोटि अत्यंत गंभीर है जो विवाह-विच्छेद का वाद चलाए जाने के लिए पर्याप्त है । प्रतिवादी का ऐसा घंमडी और अहंकारी व्यवहार के कारणवश वादी ने प्रतिवादी से सदैव अलग रहने का विनिश्चय किया है । प्रतिवादी कभी भी वादी के साथ अनुकूल नहीं हो सकी । दोनों पक्षकारों के बीच पुनर्मिलाप की कोई संभावना नहीं है ।

प्रतिवादी का पक्षकथन :

10. प्रतिवादी द्वारा फाइल किए गए लिखित कथन के अनुसार उसका पक्षकथन और प्रतिदावा इस प्रकार है कि विवाह के पश्चात् वादी के पोर्ट ब्लेयर के वापस आने के समय वह प्रतिवादी के माता-पिता के यहां रहने लगा । वह और उसका पति वास्तव में हड्डो स्थित किराए के मकान में रहते थे और दो वर्ष पश्चात् वे डेयरी फार्म स्थित किराए के मकान में स्थानांतरित हो गए । प्रतिवादी ने निश्चित रूप से वाद में किए गए सभी महत्वपूर्ण अभिकथनों से इनकार किया है । प्रतिवादी पत्नी ने यह भी कथन किया है कि पति-पत्नी के बीच आरंभ से ही संबंध सौहार्द नहीं थे क्योंकि वादी मजदूर होने और प्रतिवादी अध्यापिका होने के कारण हीन भावना से ग्रसित था । इसी हीन भावना के कारण वादी किराया प्रतिवादी को गालियां देता था ।

11. वादी पर्याय प्रतिवादी से अत्यधिक धनराशि की मांग किया करता था और इसके साथ मारपीट भी करता था । वादी पति प्रतिवादी पत्नी से उसके वेतन की पूरी राशि ले लेता था और अपनी इच्छानुसार उसका प्रयोग करता था । यहां तक कि बस के किराए के लिए प्रतिवादी पत्नी वादी से पैसे मांगा करती थी ।

12. प्रतिवादी के गर्भवती होने के कारण और उसके प्रथम प्रसव के पश्चात् भी वादी ने हीन भावना के कारण प्रतिवादी के साथ दुर्व्यवहार किया क्योंकि प्रतिवादी वादी से अधिक धर्नाजन करती थी ।

13. वादी के माता-पिता और नातेदार पर्याय दोनों पक्षों के मामले में हस्तक्षेप किया करते थे । उन्होंने पर्याय वादी से पैसा भेजने को कहा किंतु वादी ने इसके जवाब में प्रतिवादी को विवश किया कि वह अपने भाइयों से पैसा मांगे ताकि वह पैसा वादी के नातेदारों को भेजा जा सके ।

14. दूसरे बच्चे के जन्म के पश्चात् वादी प्रतिवादी को यह बताने लगा कि दोबारा पुत्री का जन्म होने से उसके परिवार पर अतिरिक्त बोझ आ गया है और प्रतिवादी को कई अवसरों पर बाहर के लोगों की उपस्थिति में पूरी तरह गालियां दी गईं ।

15. प्रतिवादी ने कभी भी वादी के साथ शारीरिक संबंध बनाने से इनकार नहीं किया । प्रतिवादी ने वादी का अभित्यजन नहीं किया और वह तो पहले ही उसके साथ रहने को तैयार है । उसे अपने बच्चों और वादी से कभी भी शत्रुता नहीं थी और उसने पुनर्मिलाप का प्रत्येक प्रयास किया ।

16. तारीख 31 अक्तूबर, 2010 को वादी ने प्रतिवादी को कुछ दस्तावेज दिए और उसने प्रतिवादी को उन पर हस्ताक्षर करने हेतु विवश किया । प्रतिवादी ने उन दस्तावेज को पढ़ने के पश्चात् आश्चर्यचकित होकर यह निष्कर्ष निकाला कि वे दस्तावेज बौंड पेपर पर टंकित किए हुए विवाह-विच्छेद करार से संबंधित हैं । वादी से यह पूछने पर कि वह विवाह-विच्छेद क्यों चाहता है इस पर वादी ने उत्तर दिया कि उसका मुख्य उद्देश्य और सपना यह था कि उसका अपना मकान हो जो कि प्रतिवादी की आय से पूरा हो चुका है, इसलिए उसे उसके जीवन में अब प्रतिवादी की आवश्यकता नहीं है । प्रतिवादी द्वारा विवाह-विच्छेद के कागजों पर हस्ताक्षर करने से इनकार करने पर वादी ने निर्दयतापूर्वक प्रतिवादी पर हमला किया और उसे घर से बाहर निकाल दिया । दोनों पुत्रियों को वादी द्वारा यह धमकी दी गई कि वे प्रतिवादी के साथ न

रहे । मामले को आपस में सुलझाने के लिए प्रतिवादी ने महिला पुलिस थाने में रिपोर्ट दर्ज कराई और वादी को तारीख 2 नवंबर, 2010 को बुलाया गया किंतु समझौता नहीं हो सका । तारीख 8 नवंबर, 2010 को वादी और पुत्रियां पुन: महिला पुलिस थाने गईं जहां प्रतिवादी भी मौजूद थी । पुत्रियों ने प्रतिवादी को बताया कि वादी ने उन्हें यह धमकी दी है कि यदि वे अपनी माता से बात करेंगी या किसी भी प्रकार का कोई संबंध रखेंगी तो वादी प्रतिवादी की हत्या कर देगा ।

17. प्रतिवादी ने स्थानीय पंचायत और समाज कल्याण बोर्ड के अध्यक्ष से वैवाहिक विवाद को आपस में निपटाने हेतु संपर्क किया । किंतु कुछ नहीं हो सका ।

18. प्रतिवादी, वादी के साथ रहने के लिए पुरी तरह चुप है और वह 19 वर्ष के वैवाहिक बंधन को तोड़ना नहीं चाहती है । घर में वादी और पुत्रियों, जो अभी किशोरावस्था में हैं, के साथ-साथ प्रतिवादी-पत्नी का मौजूद होना भी आवश्यक है क्योंकि बच्चों को माता और पिता दोनों की आवश्यकता होती है । दोनों पुत्रियों के उज्जवल भविष्य के लिए पारिवारिक जीवन बेहतर होना चाहिए और इस प्रकार प्रतिवादी, वादी के साथ वास करना चाहती है ताकि समाज में पारिवारिक मर्यादा और सम्मान बना रहे और पुत्रियों का भविष्य प्रभावित न हो ।

19. विद्वान् विचारण न्यायाधीश ने अभिवाकों के आधार पर दस विवाद्यक विरचित किए जिनमें मुख्य निम्न प्रकार हैं :–

(i) क्या प्रत्यर्थी ने अर्जीदार के साथ क्रूरता कारित की है ?

(ii) क्या प्रत्यर्थी ने अर्जीदार का अभित्यजन किया है ?

(iii) क्या अर्जीदार विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने का हकदार है ?

(iv) क्या प्रत्यर्थी दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री पाने का हकदार है ?

20. वादी (अर्जीदार साक्षी 1) ने अपने सहित तीन साक्षियों की परीक्षा कराई है । वादी की मुख्य परीक्षा शपथपत्र के आधार पर कराई गई जो वादपत्र के अनुसार ही है । वादी की प्रतिपरीक्षा के दौरान निष्पक्ष रूप से अपना कथन दिया है । तथापि, उसने यह स्वीकार किया है कि

उसने पुलिस के समक्ष इस बाबत कोई शिकायत दर्ज नहीं कराई उस पर प्रतिवादी के भाइयों द्वारा हमला किया गया था । उसने यह भी स्वीकार किया है कि बच्चों के बेहतर कल्याण और भविष्य के लिए दोनों माता-पिता का एक साथ होना आवश्यक है ।

21. अभि. सा. 2 अंडमान श्रम सेना, पोर्ट ब्लेयर में श्रमिक है । उसने यह दावा किया है कि वह वादी को उसके बचपन से जानता है । उसने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि तारीख 31 अक्तूबर, 2010 को शाम को वह वादी के घर गया और उसने घर से शोर की आवाज आती हुई सुनी । उसने अंदर जाकर यह पाया कि प्रतिवादी के भाइयों और वादी के बीच झगड़ा हो रहा है । उसने प्रतिवादी के भाइयों से शांत होने को कहा । उन्होंने श्रमिक से कहा कि वादी ने प्रतिवादी से कुछ कागजों पर हस्ताक्षर करने को कहा है । वादी ने इस बात से इनकार किया है । उस समय प्रतिवादी का भाई श्री हेमचन्द्र मूर्ति कुछ सफेद कागज लेकर आया और वे प्रतिवादी और वादी को दे दिए और उनसे कहा कि यदि वे एक साथ नहीं रह सकते तब वे अब से अलग-अलग रहेंगे । प्रतिवादी ने उन कागजों पर तुरंत हस्ताक्षर कर दिए । इसके पश्चात् प्रतिवादी के भाई ने वे कागज वादी को दिए । वादी ने कहा कि उसे प्रतिवादी से कोई परेशानी नहीं है इसलिए कुछ भी लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है । तथापि, वादी-पति को हस्ताक्षर करने के लिए विवश किया गया । वादी ने ग्राम पंचायत के अध्यक्ष को इस घटना के संबंध में शिकायत लिखी । अध्यक्ष ने यह सुझाव दिया कि इस मामले को आपस में निपटाया जाए । प्रतिवादी और उसके भाइयों ने कहा कि पंचायत में कोई भी समझौता नहीं हो सकता इसलिए वे न्यायालय, पुलिस थाने और महिला सैल में संपर्क करेंगे । वे पुलिस थाने गए और लगभग अपराह्न 11.00 बजे वापस आए और वादी से अगले दिन पुलिस थाने जाने को कहा । इसके पश्चात् वे वादी के मामा के घर उसके सामान के साथ, जो पहले से ही एक जगह बांधकर तैयार रखा हुआ था, चले गए । वहां से जाने से पूर्व प्रतिवादी के भाइयों ने कहा कि उनकी बहिन, इस मकान में दोबारा वापस नहीं आएगी ।

श्रमिक (पी. डब्ल्यू. 2) ने अपनी प्रतिपरीक्षा में वही बताया कि जो उसने अपनी मुख्य परीक्षा में कहा था । उसने यह भी कहा कि उसे यह मालूम नहीं है कि क्या वादी और प्रतिवादी एक-दूसरे के साथ रहने को तैयार हैं या नहीं । उसने यह कहा कि उसकी राय में यह उचित होगा कि पक्षकार अपने बच्चों को लेकर एक साथ रहें ।

22. पी. डब्ल्यू. 3 इस मामले में के पक्षकारों की बड़ी पुत्री है उसने तारीख 24 सितंबर, 2018 को शपथपत्र के रूप में अपनी मुख्य परीक्षा कराई है और उस समय उसकी आयु 22 वर्ष थी । इस साक्षी ने अन्य बातों के साथ निम्न साक्ष्य दिया ।

मैंने जनवरी, 2010 में अपनी माता को अपने पिता जी से यह कहते हुए सुना कि जिस तरह उसकी माता के माता-पिता द्वारा उसके पिता को पीटा गया था उसी प्रकार यदि विवाह के पश्चात् उसके पिता ने अपनी पत्नी की बात नहीं सुनी तो उसे पीटा जाएगा ।

जहां तक मुझे याद है कि मेरी माता छोटी-छोटी बातों पर मेरे साथ मारपीट करती थी । कई बार मेरे पिता ने मेरी माता से कहा कि वह बच्चों की पिटाई न किया करे किंतु इस बात पर मेरी माता ने कोई ध्यान नहीं दिया । ऐसा लगता था कि मेरी माता का निर्णय अंतिम होता था और उसका कोई भी हस्तक्षेप करने का साहस नहीं कर सकता था । बिना किसी कारण मेरी माता मुझ पर और मेरे पिता पर शर्तें अधिरोपित करती थी जिनका हमें पालन करना होता था और ऐसा न किए जाने पर मेरी माता हम सबके सामने अभ्रद भाषा का प्रयोग करते हुए मारपीट करती थी ।

मैंने अपनी माता को यह कहते हुए सुना था कि मेरा पिता उस पर आश्रित है और उसके बिना मेरा पिता कुछ नहीं है । मैंने अपनी माता को यह कहते हुए भी सुना था कि मेरा पिता विवाहेत्तर सम्बन्ध भी रखता है और किसी न किसी दिन वह यह बात साबित कर देगी । मैं जानती हूं कि मेरे पिता के कहीं भी किसी प्रकार के विवाहेत्तर सम्बन्ध नहीं हैं । आठ वर्ष से अधिक समय बीत चूका है कि मेरी माता हम से दूर रहती है । इन आठ वर्षों के दौरान मेरे पिता ने हमारा भली-भांति

भरणपोषण किया है । हमने कभी भी अपने पिता को किसी अन्य के साथ प्रेमप्रसंग में नहीं पाया ।

जब मैं 13 वर्ष की थी तो मैंने अपनी माता को अपने पिता पर चिल्लाते हुए देखा । मैंने अपने मामाओं को भी अपने पर चिल्लाते हुए देखा था । जब मेरी माता घर छोड़कर जा रही थी तब उसने घर के बाहर से हमें अपने साथ चलने के लिए आवाज़ लगाई किन्तु हमने साथ जाने से इनकार कर दिया ।

इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान वही दोहराया है जो उसने अपनी मुख्य परीक्षा में सशपथ कहा है । उसने आगे निम्न प्रकार कथन किया :–

> "... मेरी माता ने हमारी संरक्षकता के लिए एक मामला फाइल किया । ... मेरी माता मेरे पिता के साथ रहना चाहती है और मैं यह अच्छी तरह जानती हूं । मुझे इस पर आपत्ति है कि मेरे माता-पिता का मिलाप हो । यह सच नहीं है कि मेरे पिता के ससुराल वालों ने मेरे पिता को नहीं पीटा था । ... यह सच नहीं है कि मेरी माता मेरे पिता पर कभी भी नहीं चिल्लाई । यह भी सच नहीं है कि मेरे मामा मेरे पिता पर कभी नहीं चिल्लाए । यह भी सच नहीं है कि मेरी माता हमें सही रास्ता दिखाना चाहती थी और हमने उसे इसलिए स्वीकार नहीं किया कि हम अपने पिता का ही समर्थन करते हैं ... ।"

23. प्रतिवादी (डी. डब्ल्यू. 1) ने शपथपत्र के माध्यम से की गई मुख्य परीक्षा के दौरान वही दोहराया है जो उसने अपने लिखित कथन में कहा है । उसने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान अन्य बातों के साथ निम्न साक्ष्य दिया है :–

> "मेरी दोनों पुत्रियां मेरे पति के साथ रहती हैं । मेरी दोनों पुत्रियों ने मेरे पति से डरकर मेरे साथ रहने से इनकार कर दिया । मेरी बड़ी पुत्री जापान में है । वह भी बी.एससी. (एग्रीकल्चर) का कोर्स कर रही है । मेरी छोटी पुत्री पोर्ट ब्लेयर से एम.बी.बी.एस.

कर रही है । मैंने अपने पति के विरुद्ध पुलिस थाने में शिकायत दर्ज कराई है । मेरा पति मेरे साथ यातनापूर्व व्यवहार करता था और उसने विवाह-विच्छेद से संबंधित कागजों पर मुझे हस्ताक्षर करने के लिए विवश किया था । विवाह के पश्चात् मेरे माता-पिता के घर रहता था । छह महीने बाद मेरा पति पोर्ट ब्लेयर के बाहर चला गया । मैंने अपने पति को कभी कोई पत्र नहीं लिखा । वर्ष 1997 में हमारे बीच विवाद चल रहा था और उसके पश्चात् मैं अपने माता-पिता के घर चली गई । .... मेरी सास के निर्देशानुसार मेरा देवर मेनलैंड से आया और हमारे साथ रहने लगा । कुछ दिनों के बाद हमारे बीच पुन: विवाद हो गया और मामला पंचायत तक पहुंचा ...। इसके पश्चात् मेरा देवर किराए के मकान में चला गया । हम मार्च 1999 में अपने निजी मकान में चले गए ...। मैं 31 अक्तूबर, 2010 से अलग रह रही हूं ...। मैंने अपने पति के विरुद्ध पुलिस थाने में शिकायत दर्ज कराई है ...। मैंने समाज कल्याण बोर्ड के समक्ष भी अपने पति के विरुद्ध शिकायत दर्ज कराई ...। मैंने अपने बच्चों की अभिरक्षा के लिए संरक्षण का मामला फाइल किया । मेरे बच्चों को वहां बुलाया गया और उनसे पूछताछ की गई ...। मेरे पति के अन्य महिला के साथ विवाहेत्तर संबंध हैं । मैंने समाज कल्याण बोर्ड के समक्ष यह शिकायत की है कि मेरा पति विवाहेत्तर संबंध रखता है । यह सत्य नहीं है कि मेरे पति का किसी के साथ प्रेम-प्रसंग नहीं है और यह कि मैंने अपने पति को परेशान करने के लिए उसके विरुद्ध मिथ्या शिकायत दर्ज कराई है ।"

24. डी. डब्ल्यू. 2 प्रतिवादी का चचेरा भाई प्रतीत होता है । इस साक्षी ने अपनी मुख्य परीक्षा में यह कथन किया है कि प्रतिवादी ने उसे यह बताया था कि वादी उसका संपूर्ण वेतन ले लेता है और उस धन का प्रयोग अपने अनुसार करता है । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि प्रतिवादी ने भूमि क्रय करने और वैवाहिक गृह का निमार्ण करने के लिए बराबर सहयोग किया है । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि जब

वादी और प्रतिवादी के बीच विवाद हुआ था, तब पंचायत द्वारा उसका निपटारा किया गया । वह उस बैठक में मौजूद था और वादी को प्रतिवादी के साथ रहने की सलाह दी गई थी । वादी ने ऐसा करने से इनकार कर दिया । प्रतिवादी ने पंचायत के समक्ष यह कथन किया कि उसके पति ने उसे कुछ कागज दिए थे जिनमें बंधपत्र भी थे और उसने उससे उन कागजों पर हस्ताक्षर करने को कहा था और जब प्रतिवादी पत्नी ने ऐसा करने से इनकार कर दिया तो वादी पति ने उसके साथ मारपीट की और उसे धक्का देकर घर से बाहर कर दिया । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि प्रतिवादी कई बार उसके घर आई थी और उसने इस साक्षी को बताया कि वह परिवार के साथ रहना चाहती है किंतु निवेदन किए जाने के बावजूद वादी ने प्रतिवादी को अपने पास बुलाने से इनकार कर दिया ।

डी. डब्ल्यू. 2 ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान अन्य बातों के साथ निम्न अभिनिर्धारित किया है कि :-

> "मैंने कतिपय तथ्यों का उल्लेख किया है जो मेरी पदीय क्षमता के परे है । मैं वर्ष 1990 से 1995 तक बम्बूफ्लैट पंचायत का प्रदान रहा हूं । मैंने अपने शपथपत्र में यह उल्लेख नहीं किया है कि यशोदा मेरी चचेरी बहिन है ...। मुझे उस ठेकेदार का नाम मालूम नहीं है जिसने मकान का निर्माण किया था जिसका उल्लेख मुख्य परीक्षा के पैरा 4 में किया गया है ...। मैं नहीं कह सकता कि ठेकेदार का भुगतान कौन करता था ...। मैंने पंचायत में कोई भी कार्यवाही लिखित में नहीं की ...। मैंने वर्ष 2014-15 में सिम्हाचलम् से अंतिम बार चर्चा की थी । मैंने उससे प्रत्यर्थी को वापस लेने को कहा था । मुझे मालूम नहीं कि क्या कोई मामला लंबित है या नहीं ...।"

न्यायालय :

25. वर्तमान मामले में तय किए जाने के लिए मुख्य प्रश्न यह है कि क्या वादी यह सिद्ध कर पाया है कि उसके साथ प्रतिवादी द्वारा

क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया गया था । यदि वह ऐसा करने में सफल हो गया है तब वह विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने का हकदार है और प्रतिवादी दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन हेतु डिक्री पाने की हकदार नहीं होगी । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि वादी अपना पक्षकथन सिद्ध नहीं कर सका है और उसके विवाह-विच्छेद की प्रार्थना खारिज की गई है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने प्रतिवादी के इस पक्षकथन को स्वीकार किया है कि प्रतिवादी ने उसका अभित्यजन करके गलत किया है । जबकि उसके साथ रहने के लिए पहले से इच्छुक थी और तद्नुसार न्यायालय ने प्रतिवादी की दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए की गई प्रार्थना मंजूर कर ली । हमें इस पर विचार करना है कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष ठीक निकाला है कि नहीं ।

26. वर्ष 1976 के पूर्व "क्रूरता" शब्द हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अधीन विवाह-विच्छेद का आधार नहीं था । 1976 के अधिनियम सं. 68 द्वारा "क्रूरता" शब्द को विवाह-विच्छेद के आधार के रूप में निगमित किया गया । संशोधन के पश्चात् इस अधिनियम की धारा 13(1)(i-क) निम्न प्रकार है :-

> "कोई भी विवाह, वह इस अधिनियम के प्रारंभ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, पति अथवा पत्नी द्वारा उपस्थापित अर्जी पर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा इस आधार पर विघटित किया जा सकेगा कि दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठापन के पश्चात् अर्जीदार के साथ क्रूरता का व्यवहार किया है ।"

27. हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "उक्त अधिनियम" कहा गया है) के अधीन "क्रूरता" को परिभाषित नहीं किया गया है । इसका यह कारण है कि क्रूरता के अर्थ, विशेषकर मानसिक क्रूरता, को संक्षिप्त रूप में समझना असंभव है । विवाह के किसी भी पक्षकार का आचरण क्रूरता की कोटि में आता है या नहीं, इसका न्यायनिर्णयन प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर

विचार करके ही किया जा सकता है । क्रूरता की कोई संक्षिप्त और एकमात्र परिभाषा विरचित किए जाने की असंभाव्यता के बावजूद किसी भी वैवाहिक मामले में क्रूरतापूर्ण आचरण को आसानी से समझा जा सकता है और इसके संबंध में लार्ड प्रियर्स की राय का अवलंब लिया गया है कि जब दाम्पत्य दयालुता इतनी कम हो जाए कि उससे स्वास्थ्य प्रभावित हो या स्वास्थ्य प्रभावित होने की आशंका हो तब मेरी राय में क्रूरता उस कृत्य को कहा जाएगा जिस पर कोई भी युक्तियुक्त व्यक्ति आपत्ति करे कि पति या पत्नी को ऐसा कृत्य नहीं करना चाहिए था कि लार्ड प्रियर्स की इस मताभिव्यक्ति का अवलंब माननीय उच्चतम न्यायालय द्‌वारा **नवीन कोहली** बनाम **नीलू कोहली**[1] वाले मामले के पैरा 44 में लिया गया है ।

28. **शोभा रानी** बनाम **मधुकर रेड्‌डी**[2] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि वैवाहिक कर्तव्यों और दायित्वों की भिन्न कोटियां सिद्धांत हैं ; ऐसा हो सकता है कि एक प्रकार के तथ्यों से एक मामले में क्रूरता गठित हो सकती है किंतु दूसरे मामले में ऐसे तथ्यों से क्रूरता कारित नहीं होगी । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि अभिकथित क्रूरता इस बात पर भी निर्भर करती है कि पक्षकारों की जीवनशैली या उनका आर्थिक और सामाजिक स्तर कैसा है और यह पक्षकारों की उस संस्कृति पर भी निर्भर है जिसको वह अधिक महत्व देते हैं ।

29. "क्रूरता", जैसाकि उक्त अधिनियम की धारा 13(1)(i-क) के अधीन अनुध्यात है, शारीरिक और मानसिक के आधार पर आशयित और निराशयित दोनों प्रकार की हो सकती है । यदि शारीरिक क्रूरता कारित की गई है, तथ्य और कोटि का प्रश्न सामने आता है । यदि मानसिक क्रूरता कारित की गई है तब यह जांच की जानी चाहिए कि क्रूरतापूर्ण आचरण किस प्रकृति का है और इसके पश्चात् ऐसे आचरण से पति या पत्नी के मन पर कितना प्रभाव पड़ा है । ऐसे आचरण से पति-पत्नी का

---

[1] (2006) 4 एस. सी. सी. 558 = ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 1675.

[2] (1988) 1 एस. सी. सी. 105 = ए. आई. आर. 1988 एस. सी. 121.

एक-दूसरे के साथ रहना हानिकारक है या नहीं, यह प्रश्न आचरण की प्रकृति और उसका दूसरे जीवनसाथी पर पड़ने वाले प्रभाव को ध्यान में रखते हुए ही तय किया जा सकता है । क्रूरता गठित करने के लिए जिस कृत्य की सिफारिश की गई है वह इतना गंभीर होना चाहिए कि उससे यही निष्कर्ष निकले कि अर्जीदार पति या पत्नी से युक्तियुक्त रूप से यह प्रत्याशा न की जा सके कि वह अपने जीवनसाथी के साथ रह सके । तथापि, क्रूरता का अर्थ वैवाहिक जीवन की सामान्य नोंकझोंक से अधिक गंभीर है । इस संबंध में **ए. जयचन्द्र** बनाम **अनील कौर**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय को निर्दिष्ट किया जा सकता है ।

30. **वी. भगत** बनाम **डी. भगत**[2] वाले मामले के पैरा 16 में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अन्य बातों के साथ निम्न मत व्यक्त किया :–

> "दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि मानसिक क्रूरता की प्रकृति ऐसी होनी चाहिए कि पक्षकारों से यह प्रत्याशा न की जा सके कि वे एक साथ रह सके । स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि दोषी पक्षकार उसका आपत्तिजनक आचरण छुड़ाया जा सके और एक साथ रहने के लिए कहा जा सके । यह साबित करने की आवश्यकता नहीं है कि मानसिक क्रूरता ऐसी होनी चाहिए कि उससे अर्जीदार के स्वास्थ्य को हानि पहुंचे । ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए हमें पक्षकारों के सामाजिक और शैक्षणिक स्तर तथा उस समाज को देखना होगा जिसमें वे रहते हैं, जो पक्षकार पहले से ही एक-दूसरे से रह रहे हैं उनके फिर से साथ रहने की संभावना तथा उन सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करना होगा जिनके आधार पर यह कहा जा सके कि पक्षकारों के पुनर्मिलन की न तो संभावना है और न ही वांछनीय है ...।"

31. **परवीन मेहता** बनाम **इन्दरजीत मेहता**[3] वाले मामले में

---

[1] (2005) 2 एस. सी. सी. 22 = ए. आई. आर. 2005 एस. सी. 534.

[2] (1994) 1 एस. सी. सी. 337 = ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 710.

[3] (2002) 5 एस. सी. सी. 706 = ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 2582.

उच्चतम न्यायालय ने निम्न मत व्यक्त किया :-

> "हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(i-क) के प्रयोजनार्थ क्रूरता एक दम्पत्ति का दूसरे दम्पत्ति के प्रति ऐसा आचरण है जिससे उसके मन में ऐसी युक्तियुक्त शंका होती है कि उसके साथी का आचरण उसके या उसके वैवाहिक बंधन के लिए सुरक्षित नहीं है । मानसिक क्रूरता पति/पत्नी की एक-दूसरे के प्रति मानसिक स्थिति और भावना है । शारीरिक क्रूरता से भिन्न मानसिक क्रूरता को प्रत्यक्ष साक्ष्य द्‌वारा सिद्ध करना कठिन है । इसे मामले के तथ्य और परिस्थितियों के आधार पर ही समझा जा सकता है । पति/पत्नी की एक-दूसरे के प्रति पीड़ा, निराशा और कुंठा का मूल्यांकन उनके आचरण तथा उन सुसंगत तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर किया जा सकता है जिनका संबंध दम्पत्ति के वैवाहिक जीवन से होता है । सुसंगत तथ्यों और परिस्थितियों से निष्कर्ष संचयी रूप से ही निकाला जाना चाहिए । मानसिक क्रूरता के मामले में केवल एक घटना को लेकर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि पति या पत्नी का आचरण दूसरे के प्रति मानसिक क्रूरता कारित करने के लिए पर्याप्त है या नहीं । अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से उद्भूत तथ्य और परिस्थितियों के संचयी प्रभाव पर विचार किया जाना चाहिए और इसके पश्चात् निष्पक्ष रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि क्या अर्जीदार ने विवाह-विच्छेद की अर्जी मानसिक क्रूरता के ही आधार पर फाइल की है ।"

उपरोक्त मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि पत्नी का पति के साथ सहवास करने से इनकार करना, हठी होना और चिकित्सा परीक्षण कराए जाने से निरंतर इनकार करना, पति और उसके माता-पिता के विरुद्ध मिथ्या शिकायतें दर्ज कराना जैसे अनियमित आचरण से पति की मानसिक स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जो मानसिक क्रूरता की कोटि में आता है ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

32. **ए. जयचन्द्र** बनाम **अनील कौर** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि पति के आचरण, सत्यनिष्ठा और चरित्र पर पत्नी द्‌वारा मिथ्यारोप लगाया जाना पत्नी का ऐसा आचरण माना जा सकता है जिससे पति को अपरिहार्य मानसिक क्रूरता कारित हो सके । **नवीन कोहली** बनाम **नीलू कोहली** (उपरोक्त) वाले मामले में विवाह के दोनों पक्षकार एक-दूसरे को बदनाम किया और अपमानजनक व्यवहार भी किया । विचारण न्यायालय से उच्चतम न्यायालय तक विवाह-विच्छेद की लंबी विधिक प्रक्रिया के बावजूद प्रत्यर्थी-पत्नी ने पारस्परिक विवाह-विच्छेद के लिए सहमति देने से इनकार कर दिया । यहां तक कि अभिलेख पर ऐसी कोई सामग्री नहीं कि जिससे यह पता चलता हो कि इस विवाह-बंधन को जारी रखना किसी भी प्रकार से संभव है । उच्चतम न्यायालय ने इस निर्णय के पैरा 83 में निम्न मत व्यक्त किया है :-

> "इस प्रक्रम पर भी प्रत्यर्थी आपसी सहमति से विवाह-विच्छेद नहीं चाहती है । संपूर्ण साक्ष्य का विश्लेषण और मूल्यांकन करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी का जीवन भी नरक बनाने के लिए स्वयं को कष्ट देने का संकल्प ले लिया है । मामले के तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए, इस प्रकार का हठी और कठोर व्यवहार से हमारे मन में ऐसा कोई संदेह नहीं रह जाता है कि प्रत्यर्थी अपीलार्थी के साथ मानसिक क्रूरता कारित करने हेतु आतुर है । यह पूर्णतया स्पष्ट है कि पक्षकारों का विवाह असाध्य रूप से समाप्त हो चुका है और उनके पुन: साथ रहने की कोई गुंजाइश नहीं है ।"

33. **समर घोष** बनाम **जया घोष**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने कतिपय उदाहरण दिए हैं, जो यद्‌यपि संपूर्ण नहीं है, किंतु इन्हें मानसिक क्रूरता की कोटि में रखा जा सकता है । निर्णय के पैरा 101 में उच्चतम न्यायालय ने निम्न मत व्यक्त किया है :-

---

[1] (2007) 4 एस. सी. सी. 511 = ए. आई. आर. ऑनलाइन 2007 एस. सी. 347.

"मार्गदर्शन के लिए कोई भी एक सूत्र अधिकथित नहीं किया जा सकता फिर भी हम मानव आचरण के कुछ उदाहरणों का उल्लेख करना उचित समझते हैं जो "मानसिक क्रूरता" के मामलों पर विचार किए जाने के लिए सुसंगत हैं । उत्तरवर्ती पैराओं में दिए गए परिस्थितियां उदाहरणात्मक हैं न कि संपूर्ण –

(i) पक्षकारों के संपूर्ण वैवाहिक जीवन पर विचार करने के पश्चात् यदि यह पता चलता है कि मानसिक पीड़ा, कष्ट और संताप इतना है कि पक्षकारों का एक-दूसरे के साथ रहना संभव नहीं होगा, तब ऐसी स्थिति को 'मानसिक क्रूरता' की कोटि में रखा जा सकता है ।

(ii) पक्षकारों के संपूर्ण वैवाहिक जीवन का परिशीलन करने पर यदि यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि परिस्थिति ऐसी है कि दोषी पक्षकार से युक्तियुक्त रूप से ऐसा आचरण न करने और दूसरे पक्षकार के साथ रहने को नहीं कहा जा सकता है, तब इसे मानसिक क्रूरता की कोटि में रखा जा सकता है ।

(iii) संबंधों में मात्र शिथिलता या प्रेमभाव को क्रूरता की कोटि में नहीं रखा जा सकता ; अभद्र भाषा का निरंतर प्रयोग, ढिठाई, उदासीनता और अपेक्षा इतनी बढ़ जाए कि दूसरे पक्षकार के लिए साथ रहना असंभव हो जाए ।

(iv) मानसिक क्रूरता का मन की दशा है । एक पक्षकार द्वारा दूसरे के प्रति गहरी पीड़ा, निराशा और कुंठा का भाव लंबे समय तक रखना मानसिक क्रूरता का कारण बन सकता है ।

(v) एक पक्ष के द्वारा दूसरे के प्रति अभद्र और अपमानजनक व्यवहार किया जाना और उसका जीवन दुखी बना देना 'मानसिक क्रूरता' की कोटि में आता है ।

(vi) एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्षकार के प्रति इतना अन्यायोचित व्यवहार निरंतर किया जाना कि उसका शारीरिक

और मानसिक स्वास्थ्य प्रभावित हो जाए । आक्षेपित आचरण और पारिणामिक भय अत्यंत गंभीर होना चाहिए ।

(vii) निरंतर किए जाने वाला निंदनीय आचरण, अपेक्षा, उदासीनता इतनी बढ़ जाए कि दांपत्य दयालुता का पूर्ण अभाव हो जाए जिससे दूसरे पक्षकार के मानसिक स्वास्थ्य को क्षति पहुंचे या दोषी पक्षकार को परपीड़क आनंद की अनुभूति हो, तब इसे मानसिक क्रूरता की कोटि में रखा जा सकता है ।

(viii) दोषी पक्षकार का आचरण ईर्ष्या स्वार्थ या अधिकार आत्मक की सीमा के पार होना चाहिए जिससे आप प्रसन्नता और असंतोष कृत हो और भावनात्मक रूप से परेशान होने की स्थिति को मानसिक क्रूरता की कोटि में रखकर विवाह-विच्छेद का आधार नहीं माना जा सकता ।

(ix) वैवाहिक जीवन में रोजमर्रा होने वाली छोटी-मोटी नोंक-झोंक को मानसिक क्रूरता मान कर विवाह-विच्छेद के लिए उचित आधार नहीं माना जा सकता ।

(x) वैवाहिक जीवन का आंकलन करने के लिए संपूर्ण वैवाहिक काल पर विचार किया जाना चाहिए और यदा-कदा होने वाली तुच्छ घटनाओं को 'मानसिक क्रूरता' की कोटि में नहीं रखा जा सकता । दुर्व्यवहार निरंतर और दीर्घकालिक होना चाहिए जिसमें संबंध इस सीमा तक दूषित हो जाएं कि दोषी पक्षकार के लिए दूसरे पक्षकार के साथ रहना असंभव हो जाए तब इसे 'मानसिक क्रूरता' की कोटि में रखा जा सकता है ।

(xi) यदि कोई पति बिना चिकित्सीय कारणों के अपनी पत्नी की सहमति के बिना यह उसे बताए बिना अपनी नसबंदी करवा लेता है या कोई पत्नी बिना चिकित्सीय कारणों के पति की सहमति के बिना यह उसे बताए बिना अपनी नसबंदी करा लेती है या गर्भपात करा लेती है तब दोषी पक्षकार के ऐसे कृत्य से 'मानसिक क्रूरता' कारित हो सकती है ।

(xii) बिना किसी शारीरिक अक्षमता या बिना किसी उचित कारण के लंबे समय तक संभोग न करने का एकपक्षीय निर्णय 'मानसिक क्रूरता' की कोटि में आ सकता है ।

(xiii) विवाह बंधन से संतानोत्पत्ति न करने का पति या पत्नी का एकपक्षीय फैसला क्रूरता की कोटि में आ सकता है ।

(xiv) जहां लंबे समय से पति-पत्नी एक दूसरे से अलग रह रहे हो, तब यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वैवाहिक बंधन में सुधार करना सीमा के परे है । ऐसी स्थिति में विवाह, विधिक बंधन के बावजूद मिथ्या हो जाता है, ऐसे मामलों में विधि से भी विवाह की पवित्रता कायम नहीं रह पाती है बल्कि पक्षकारों को एक-दूसरे की भावनाओं और संवेदनाओं का भी एहसास नहीं होता है । ऐसी परिस्थितियों को 'मानसिक क्रूरता' की कोटि में रखा जा सकता है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

34. **विजय कुमार रामचन्द्र भाटे** बनाम **नीला विजय कुमार भाटे**[1] वाले मामले के पैरा 7 में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्न मत व्यक्त किया है :-

"पहला प्रश्न यह है कि क्या अपीलार्थी-पति द्वारा अपनी पत्नी के चरित्र पर लगाए गए आरोप तथा प्रकथनों से ऐसी मानसिक क्रूरता कारित होती है जिसके आधार पर अधिनियम की धारा 13(1)(i-क) के अधीन विवाह-विच्छेद का दावा किया जा सके । इस संबंध में विधि सुस्थापित है और उसके अधीन यह स्पष्ट किया गया है कि अपवित्रता का अभियोग और किसी महिला के साथ पति का विवाहेत्तर संबंध बनाना, उसकी पत्नी के सम्मान, छवि, हैसियत तथा स्वास्थ्य पर गंभीर हमला है । पत्नी के साथ किया गया ऐसा विश्वासघात भारतीय पत्नी की दृष्टि में इतना अपमानजनक है कि इसे पर्याप्त रूप से विधि के अधीन 'मानसिक

---

[1] (2003) 6 एस. सी. सी. 334 = ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 2462.

क्रूरता' तीव्रता की कोटि में रखा जा सकता है जिसके आधार पर पत्नी विवाह-विच्छेद का दावा कर सकती है । लिखित कथन में किए गए ऐसे अभिकथन और प्रतिपरीक्षा में दिए गए सुझावों से विधि की अपेक्षा का समाधान हो जाता है जो इस न्यायालय द्वारा दृढ़तापूर्वक अधिकथित की गई है । अभिकथनों के सुसंगत भाग का परिशीलन करने पर हमारा यह निष्कर्ष है कि कुटुम्ब न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों को किसी भी अपवाद के रूप में नहीं लिया जा सकता । हमारा यह विचार है कि न्यायालय द्वारा व्यक्त की गई परिस्थितियों की श्रेणी और परिमाण ऐसा है कि उसे एक पक्षकार को इतनी मानसिक पीड़ा और कष्ट होता है जिसे वैवाहिक विधि के अधीन क्रूरता की कोटि में रखा जा सकता है और यह पीड़ा इतनी गंभीर होती है कि एक पक्षकार को युक्तियुक्त रूप से यह आशंका होती है कि ऐसे पति के साथ रहना उसके लिए भयप्रद होगा जो उस पर कटाक्ष करता रहता है और वैवाहिक जीवन को असंभव बनाए हुए है ।"

35. **जी. वी. एन. कामलेश्वर राव** बनाम **जी. जबिल्ली**[1] वाले मामले में कुटुंब न्यायालय ने मानसिक क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद के लिए पति की प्रार्थना मंजूर की । उच्च न्यायालय ने विवाह-विच्छेद की डिक्री अपास्त करते हुए पत्नी द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर की । उच्चतम न्यायालय ने पति की ओर से फाइल की गई अपील मंजूर करते हुए निर्णय के पैरा 8 में निम्न मत व्यक्त किया :–

"एक अन्य महत्वपूर्ण घटना जिस पर कुटुंब न्यायालय द्वारा विचार किया गया, इस प्रकार है कि प्रत्यर्थी ने पुलिस के समक्ष यह शिकायत दर्ज कराई कि उसे उसके पति (अपीलार्थी) और उसकी माता द्वारा पीटा गया है । अपीलार्थी और उसकी माता को पुलिस थाने बुलाया गया जिन्हें वहां 10 घंटे से अधिक समय तक रहना पड़ा । इस घटना के लिए प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा दिया गया स्पष्टीकरण संतोषजनक नहीं पाया गया । प्रत्यर्थी-पत्नी के अनुसार

[1] (2002) 2 एस. सी. सी. 296 = ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 576.

उसके पति और उसकी सास द्वारा दुर्व्यवहार किया जा रहा था और जब एक दिन पत्नी नाश्ता बना रही थी और उसने दाल पीसने के लिए ब्लेन्डर का प्रयोग किया तब इस पर उसकी सास नाराज हो गई और पत्नी को फटकारते हुए कहा कि वह अपने मायके से कोई सामान नहीं लाई है, इसलिए उसे ब्लेन्डर का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए । इसके अतिरिक्त प्रत्यर्थी ने यह अभिकथन किया कि अपीलार्थी और उसके माता ने सभी थैले और कपड़े फेंक दिए और उसकी सास ने उसके पति से कहा कि वह प्रत्यर्थी को बाहर कर दे और इस पर अपीलार्थी आवेश में आ गया और उसने प्रत्यर्थी-पत्नी पर धार-धार आयुध से वार किया और इन परिस्थितियों में प्रत्यर्थी को रक्तमय क्षतियां कारित हुईं और उसने पुलिस में शिकायत दर्ज कराई । यह उल्लेखनीय है कि पुलिस ने यह जानकर कोई मामला दर्ज नहीं किया कि यह छोटा-मोटा घरेलू झगड़ा है जो कोई गंभीर मामला नहीं है और इस घटना से अपीलार्थी का आत्मनियंत्रण खो देना प्रतीत होता है जिसके कारण प्रत्यर्थी-पत्नी को यह कदम उठाना पड़ा है । किंतु अपीलार्थी और उसकी माता के जीवन-स्तर और सामाजिक परिस्थितियों पर विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि जो मानसिक पीड़ा उन्हें पहुंची है वह अत्यधिक है ।

36. उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट रूप से यह उद्भूत होता है कि "मानसिक क्रूरता" या "शारीरिक क्रूरता" की ऐसी संक्षिप्त परिभाषा नहीं दी जा सकती जिसका सार्वत्रिक रूप से प्रयोग की जा सके । तथापि, शारीरिक क्रूरता में शारीरिक यातना का तत्व होता है जबकि मानसिक क्रूरता केवल भावात्मक कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है मानसिक क्रूरता का अर्थ पति-पत्नी द्वारा एक-दूसरे को शब्दों या आचरण से मानसिक यातना पहुंचाना है । यह यातना ऐसी होनी चाहिए जिससे व्यथित पक्षकार के बीच वैवाहिक संबंध जारी रखना असंभव हो जाए । यह निश्चित करना असंभव होगा कि एक पक्षकार के किस प्रकार के शब्द या उसका किस प्रकार का आचरण दूसरे पक्षकार के प्रति मानसिक क्रूरता की कोटि में आएगा । तथ्यों के आधार पर यह आकलन करना

होगा कि क्या एक पक्षकार के आचरण से दूसरे पक्षकार को मानसिक क्रूरता कारित होती है या नहीं । एक पक्षकार (पति या पत्नी) ने दूसरे पक्षकार के साथ मानसिक क्रूरता कारित की है या नहीं, यह सुनिश्चित करने के लिए पक्षकारों के सामाजिक स्तर, उनकी शैक्षणिक योग्यता और उनका समाज में परिचालन जैसे कारकों पर विचार करना होगा । एक पक्षकार के आचरण द्वारा दूसरे पक्षकार के मन में पीड़ा, निराशा और कुंठा का भाव पैदा होना आम तौर पर अभिकथित मानसिक क्रूरता का कारण बनता है । इस सीमा तक यह कहा जा सकता है कि मानसिक क्रूरता मन की स्थिति है जो व्यक्तिपरक है । तथापि, व्यथित पक्षकार दूसरे पक्षकार द्वारा कारित मानसिक क्रूरता साबित कर पाए या न कर पाए । इसका निर्धारण उन तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए निष्पक्ष रूप से किया जाना चाहिए जिनमें दोनों पक्षकार अर्थात् पति-पत्नी रहते हैं । यदि किसी प्रज्ञावान व्यक्ति को यह प्रतीत होता है कि एक पक्षकार का आचरण ऐसा है कि दूसरे पक्षकार से यह प्रत्याशा नहीं की जा सकती कि वह पहले पक्षकार के साथ वैवाहिक संबंध जारी रखे, तब यह कहा जा सकता है कि मानसिक क्रूरता कारित हुई है । स्वाभाविकत:, अचानक कभी घटित हुई किसी एक घटना के आधार पर पक्षकार के क्रूर व्यवहार को साबित नहीं किया जा सकता । अर्जीदार पक्षकार को यह दर्शित करना चाहिए कि उसे युक्तियुक्त समयावधि के दौरान मानसिक क्रूरता कारित की हुई और उससे उसे इतनी मानसिक पीड़ा पहुंची है कि वह दूसरे पक्षकार के साथ नहीं रह सकता ।

37. वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी के अनुसार भी विवाह के तत्काल पश्चात् से ही पक्षकारों के बीच संबंध सौहार्द नहीं थे । पक्षकारों द्वारा एक-दूसरे पर शारीरिक क्रूरता को लेकर आरोप या प्रति-आरोप लगाए गए हैं । अपीलार्थी ने यह कथन किया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने कई बार अपने माता-पिता को उकसाया है कि वे अपीलार्थी की पिटाई करे । उसने यह भी कथन किया है कि प्रत्यर्थी बच्चों और बाहर के लोगों के सामने अभ्रद भाषा का प्रयोग करती थी । यदि हम अपीलार्थी-पति के इस साक्ष्य को कम महत्व दें तब भी अभि. सा. 3, जो उनकी बड़ी पुत्री है, के साक्ष्य से अपीलार्थी के साक्ष्य की संपुष्टि होती है । अभि. सा. 3 उस

समय आयु 22 वर्ष थी जब न्यायालय में उसकी सशपथ मुख्य परीक्षा कराई गई थी । हमारे पास अभि. सा. 3 के इस साक्ष्य पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है कि वह अपने पिता के साक्ष्य का समर्थन क्यों कर रही है । अभि. सा. 3 ने निष्पक्ष रूप से यह कथन किया है कि प्रत्यर्थी, अपीलार्थी के साथ रहने के लिए इच्छुक है किंतु अभि. सा. 3 यह नहीं चाहती है कि उसके माता-पिता का पुर्नमिलाप हो जाए । इस प्रकार बड़ी पुत्री की यह राय है कि उसके माता-पिता का पुर्नमिलन सफल नहीं हो सकता ।

38. अभि. सा. 3 के साक्ष्य से यह पता चलता है कि प्रत्यर्थी के भाई अपीलार्थी को गालियां दिया करते थे । अभि. सा. 3 ने भी यह अभिसाक्ष्य दिया है कि अपीलार्थी को बताया करती थी कि अपीलार्थी उस पर आश्रित है और प्रत्यर्थी की सहायता के बिना वह कुछ नहीं कर सकता । इस बिन्दु पर प्रत्यर्थी की प्रतिपरीक्षा नहीं कराई गई है ।

39. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होता है कि प्रत्यर्थी न केवल अपने बच्चों के सामने बल्कि बाहर के लोगों की मौजूदगी में अपीलार्थी के साथ अपमानजनक व्यवहार करती थी । अगर एक पक्षकार को निरंतर गालियां दी जाती हैं, दुर्व्यवहार किया जाता है और उससे यह कहा जाता है कि वह किसी काम का नहीं है तब ऐसा कृत्य मानसिक क्रूरता की कोटि में आएगा ।

40. अपीलार्थी ने यह भी दलील दी है कि प्रत्यर्थी ने सदैव उसके चरित्र पर संदेह किया है । वास्तव में, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य से यह पता चलता है कि प्रत्यर्थी ने समाज कल्याण बोर्ड तथा पुलिस थाने जैसे कई फोरमों में उसके विरुद्ध शिकायतें दर्ज कराएं । इस प्रकार हमारे अनुसार यह भी मानसिक क्रूरता है । भारतीय समाज में किसी पत्नी या पति पर व्यभिचार का आरोप लगाना निश्चित रूप से दूसरे पक्षकार के प्रति क्रूरता की कोटि में आएगा । किसी भी मानव के लिए उसका चरित्र और उसकी प्रतिष्ठा दोनों अत्यंत महत्वपूर्ण हैं । कुछ ही कृत्य ऐसे होते हैं जिन्हें मिथ्या और सारहीन आधार पर पति या पत्नी के चरित्र पर आरोप लगाने से अधिक गंभीर हों । यह भी प्रतीत होता है कि अपीलार्थी

के विरुद्ध प्रत्यर्थी द्वारा की गई शिकायत में पुलिस को कोई सच्चाई नहीं मिली और इसी कारण पुलिस ने इस शिकायत पर कोई कार्रवाई नहीं की । एक वैवाहिक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार के विरुद्ध मिथ्या शिकायत दर्ज कराना भी निश्चित रूप से मानसिक क्रूरता है ।

41. प्रत्यर्थी द्वारा विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए लिखित कथन अर्थात् अभिवाक् में भी प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के विरुद्ध ऐसे अभिकथन किए हैं जो अत्यंत अपमानजनक हैं । प्रत्यर्थी ने यह अभिकथन किया है कि अपीलार्थी प्रत्यर्थी का संपूर्ण वेतन ले लिया करता था और उसका उपयोग अपनी इच्छानुसार करता था । प्रत्यर्थी-पत्नी ने यह भी कथन किया है कि अपीलार्थी हीनभावना का शिकार था क्योंकि वह एक श्रमिक और प्रत्यर्थी अध्यापिका थी । प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपीलार्थी के विवाहेत्तर प्रेम-प्रसंग के संबंध में अभिकथन किया है । इनमें से कोई भी अभिकथन किसी भी स्वतंत्र साक्षी द्वारा सारभूत साबित नहीं किया गया है । इसके प्रतिकूल अभि. सा. 3 ने स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि अपीलार्थी किसी भी अन्य महिला के साथ अन्तर्वलित नहीं था । प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा अपीलार्थी-पति के विरुद्ध किए गए ऐसे गंभीर और पूरी तरह मिथ्या अभिकथनों से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि प्रेम, स्नेह और विश्वास जिस पर वैवाहिक संबंध आधारित होता है और उसका अस्तित्व बना रहता है, घटते-घटते शून्य हो गया है । दोनों पक्षकारों के बीच न कोई प्रेम-भावना और न ही कोई लगाव प्रतीत होता है । यह विवादित नहीं है कि पक्षकार वर्ष 2010 से अलग-अलग रह रहे हैं । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का संचयी रूप से आकलन करने पर हमारा यह मत है कि यदि हमने अपीलार्थी द्वारा की गई विवाह-विच्छेद की प्रार्थना को मंजूर नहीं किया और दोनों पक्षकारों को एक साथ रहने के लिए विवश किया तो यह विवाह जैसे पवित्र बंधन का अपकार करना होगा । पक्षकार पहले से ही अलग-अलग रह रहे हैं । दोनों पक्षकारों के मन में एक-दूसरे के प्रति कटुता और शत्रुता की भावना उत्पन्न हो गई है । हमारा यह मत है कि दोनों पक्षकारों के हित में यह होगा कि उनका

विवाह विघटित कर दिया जाए । यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि पक्षकारों की बड़ी पुत्री भी ऐसा ही महसूस करती है ।

42. जहां तक अपीलार्थी के साथ रहने और विवाह-बंधन को बनाए रखने संबंधी इच्छा को लेकर प्रत्यर्थी के अभिवाक् और साक्ष्य का संबंध है, हम इस बात से सहमत हैं कि प्रत्यर्थी के अभिवाक् और साक्ष्य में सच्चाई नहीं है । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से हमें यह विश्वास हो गया है कि अपीलार्थी के साथ वैवाहिक संबंध जारी रखने की प्रत्यर्थी की तथाकथित इच्छा एक बहाना है ताकि उसके आधार पर वह दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री प्राप्त कर सके । हम यह महसूस करते हैं कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने यह सब प्रतिशोधी हेतु के साथ केवल अपीलार्थी की मानसिक शांति भंग करने और उसको पीड़ा देने के लिए किया है जिसके लिए उसने अपनी मानसिक शांति भी भंग की है ।

43. जहां तक दोनों पुत्रियों, जो अब वयस्क हैं, के कल्याण का संबंध है वे अपने भविष्य को बनाने में व्यस्त हैं । वर्तमान में, दोनों में से कोई भी पुत्री अपने माता-पिता के साथ नहीं रहती है । किसी भी स्थिति में यह कहा जा सकता है कि दोनों पक्षकार लगभग 11 वर्षों से अलग-अलग रह रहे हैं । हमारा यह निष्कर्ष है कि इन पुत्रियों के माता-पिता का विधिक पृथक्करण करने से उनके कल्याण पर कोई भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

44. विवाह एक ऐसा बंधन है जिसमें पुरुष और स्त्री पारिवारिक जीवन बिताते हैं । यह प्रत्याशा की जाती है कि यह बंधन इतना स्थायी होता है कि उसमें पुरुष और स्त्री को सामाजिक रूप से साथ-साथ रहने के लिए अनुज्ञात किया जाता है । "विवाह" शब्द विधिक संविदा या सिविल स्टेटस या धार्मिक रीति अथवा सामाजिक प्रथा को निर्दिष्ट करता है । वास्तव में विवाह योग्य पुरुष और स्त्री द्वारा एक साथ जीवन बिताने का नाम विवाह है । परस्पर प्रेम, स्नेह और सम्मान सफल विवाह के मूल आधार हैं । जिस प्रकार एक मकान बिना नींव और स्तंभ के ढह जाता है उसी प्रकार प्रेम, स्नेह और सम्मान के बिना विवाह कायम नहीं रह सकता और पक्षकार एक-दूसरे चिंता करना छोड़ देते हैं ।

ऐसे मामले में वैवाहिक बंधन एक दिखावा बनकर रह जाता है जो केवल कागजों में ही दिखाई देता है । हमारी राय में वर्तमान मामला ऐसा ही है । पक्षकारों को निश्चित रूप से एक-दूसरे के प्रति कोई भी सकारात्मक लगाव नहीं है । उन्होंने काफी लंबे समय से एक-दूसरे की चिंता करना छोड़ दिया है । विवाह केवल नाम-मात्र रह गया है । ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि दोनों पक्षकार पुन: एक-दूसरे के साथ रह सकते हैं । इन परिस्थितियों में विवाह असाध्य रूप से विघटित हो चुका है और अब ऐसी स्थिति में विवाह-बंधन बनाए रखने हेतु निदेश देने का अर्थ दोनों पक्षकारों विशेषकर अपीलार्थी की पीड़ा काल को और बढ़ाना होगा ।

45. हमने विद्वान् विचारण न्यायालय के निर्णय का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है । हमें खेद है कि हम अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य तथा विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा लागू की गई विधि के मूल्यांकन से सहमत नहीं हैं ।

46. परिणामत: ये अपीलें सफल होती हैं । दोनों अपीलाधीन निर्णय और डिक्री उलटे जाते हैं अर्थात् अपीलार्थी द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए की गई प्रार्थना का खारिज किया जाना उलट जाता है और दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए प्रत्यर्थी की जो प्रार्थना मंजूर की गई थी वह भी उलटी जाती है । अब इस मामले में के पक्षकारों के विवाह को विघटित करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करते हैं ।

47. तद्नुसार, 2002 की एफ.ए.टी. सं. 2 और 2021 की एफ.ए.टी. सं. 2 मंजूर की जाती है । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

इस निर्णय और आदेश की प्रमाणित फोटो प्रति, यदि आवेदित है, पक्षकारों को आवश्यक औपचारिकताओं का अनुपालन करने पर तत्काल उपलब्ध कराई जाए ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

अस.

कामिल वजीहुद्दीन सिद्दीकी

बनाम

गुजरात राज्य

(2020 की विशेष सिविल याचिका सं. 16357)

तारीख 10 मार्च, 2021

न्यायमूर्ति विपुल एम. पंचोली

जन्म और मृत्यु रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1969 (1969 का 18) – धारा 15 [सपठित गुजरात जन्म और मृत्यु रजिस्ट्रीकरण नियम, 2004 का नियम 11] – जन्म प्रमाणपत्र को ठीक करना – जन्म प्रमाणपत्र में याची के पुत्र का नाम "जिबरील" अभिलिखित किया जाना – धार्मिक गुरु के सुझाव पर नाम "जिबरील" से बदलकर "अरसील" किया जाना – याची द्वारा पुत्र के नाम में जो परिवर्तन किया गया है उसे गुजरात सरकार के राजपत्र में प्रकाशित कराया गया है और साथ ही आधार कार्ड तथा विद्यालय के अभिलेख में भी तदनुसार ठीक कराया गया है, ऐसी स्थिति में याची जन्म प्रमाणपत्र में अपने पुत्र का नाम ठीक कराने का हकदार है और अपर मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट का आक्षेपित आदेश न्यायोचित नहीं है ।

इस मामले में याची की ओर से विद्वान् अधिवक्ता ने याचिका ज्ञापन में किए गए प्रकथनों को निर्दिष्ट किया है और इसके पश्चात् यह दलील दी है कि जन्म प्रमाणपत्र में याची के पुत्र का नाम "जिबरील" लिखा गया है, जबकि आध्यात्मिक गुरु के सुझाव के पश्चात् याची के पुत्र का नाम "जिबरील" से बदलकर "अरसील" कर दिया गया है । यह दलील दी गई है कि याची के पुत्र का नाम ठीक कराया गया है और इसे तारीख 18 जनवरी, 2018 को गुजरात सरकार के राजपत्र में प्रकाशित किया गया है, उक्त राजपत्र की प्रतिलिपि अभिलेख के पृष्ठ सं. 25 पर उपलब्ध है । यह भी दलील दी गई है कि आधार कार्ड तथा विद्यालय में

याची के पुत्र का नाम "अरसील" ही लिखा गया है । तत्पश्चात् याची के विद्वान् अधिवक्ता ने यह दलील दी है कि याची ने अपने पुत्र के नाम में शुद्धि लगाने के लिए प्रत्यर्थी सं. 3 से निवेदन किया था, तथापि, प्रत्यर्थी सं. 3 ने संबद्ध प्राधिकारी द्वारा जारी तारीख 18 फरवरी, 2016 के प्रपत्र का अवलंब लेते हुए तारीख 30 जुलाई, 2020 के आक्षेपित आदेश द्वारा याची की प्रार्थना रद्द कर दी । याची ने प्रत्यर्थी सं. 3 के तारीख 30 जुलाई, 2020 और अपर मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, अहमदाबाद के तारीख 4 नवंबर, 2020 के आक्षेपित आदेश को चुनौती देते हुए संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका फाइल की । याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन करने के पश्चात् यह पता चलता है कि अभिलेख में याची के पुत्र का नाम "जिबरील" लिखा गया है, जबकि इसके तत्काल पश्चात् इसमें संशोधन किया गया और संशोधित नाम को 18 जनवरी, 2018 के गुजरात सरकार के राजपत्र में प्रकाशित कराया तथा वही संशोधित नाम आधार कार्ड में भी लिखवाया और इन दोनों दस्तावेजों में याची के पुत्र का नाम "अरसील" ही दिखाई पड़ता है । इसी प्रकार स्कूल के अभिलेख में भी यही नाम पाया गया है । आक्षेपित आदेश/संसूचना से यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी सं. 3 ने अधिनियम, 1969 तथा इससे संबंधित नियम 11 के अधीन कोई भी जांच कराए बिना संबद्ध प्राधिकारी द्वारा जारी तारीख 18 फरवरी, 2016 के प्रपत्र के आधार पर याची की प्रार्थना खारिज कर दी । इस प्रक्रम पर प्रत्यर्थी सं. 3 की ओर से हाजिर होने वाली विद्वान् अधिवक्ता श्रीमती कल्पना रावल द्वारा दी गई इस दलील पर भी विचार किया जाना अपेक्षित है कि प्रत्यर्थी सं. 3 ने जन्म प्रमाणपत्र में याची का नाम लिखने में कोई गलती नहीं की है । अत: यदि प्रत्यर्थी सं. 3 याची के जन्म प्रमाणपत्र में संशोधन किया जाना उचित समझता है, तब याची से यह अपेक्षा की जाती है कि वह प्रत्यर्थी सं. 3 को उसकी लागत का संदाय करेगा । तद्नुसार, प्रत्यर्थी सं. 3

द्वारा तारीख 30 जुलाई, 2020 की संसूचना/आदेश एतद्द्वारा अभिखंडित और अपास्त किए जाते हैं । यह मामला नए सिरे से विनिश्चित किए जाने के लिए प्रत्यर्थी सं. 3 को वापस भेजा जाता है । प्रत्यर्थी सं. 3 याची द्वारा प्रस्तुत किए गए आवेदन/अभ्यावेदन को विनिश्चित करेगा और अधिनियम, 1969 की धारा 15 और उससे संबंधित नियमों के अधीन यथा अनुध्यात जांच कराने और याची द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 3 विधि के अनुसरण में समुचित आदेश पारित करेगा । इस आदेश की प्राप्ति की तारीख से 6 सप्ताह के भीतर प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा जांच कराई जाएगी । यदि प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा याची की प्रार्थना स्वीकार की जाती है, तब याची, जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, प्रत्यर्थी सं. 3 को लागत के रूप में 5,000/- रुपए का संदाय करना होगा । (पैरा 6, 7, 10 और 11)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2020]	विशेष सिविल आवेदन सं. 13148/ 2009/12.01.2020 : **राजेशभाई शंभूभाई वोरा** बनाम **गुजरात राज्य** ;	4
[2019]	(2019) 3 जी. एल. आर. 1866 = ए. आई. आर. 2019 गुजरात 56 : **सेजलबेन मुकुंदभाई पटेल** बनाम **गुजरात राज्य और एक अन्य ।**	4, 8

सिविल रिट अधिकारिता : 2020 की विशेष सिविल याचिका सं. 16357.

प्रत्यर्थी सं. 3 के तारीख 30 जुलाई, 2020 के आक्षेपित आदेश और मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट, अहमदाबाद के तारीख 4 नवंबर, 2020 को पारित आक्षेपित आदेश के विरुद्ध संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन याचिका ।

याची की ओर से श्री ए. आर. कादरी

प्रत्यर्थी की ओर से श्री आर. बी. रावल (अपर सरकारी प्लीडर) और श्री कल्पना रावल

आदेश

याची ने भारत के संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन याचिका फाइल करते हुए निम्न अनुतोष पाने की प्रार्थना की है :–

(क) माननीय न्यायाधीश से निवेदन किया जाता है कि प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा तारीख 20 जुलाई, 2020 को पारित आक्षेपित आदेश (उपाबंध-ए) तथा विद्वान् अपर मुख्य मैट्रोपोलिटन मजिस्ट्रेट (न्यायालय सं. 8), ए. एम. सी. अहमदाबाद द्वारा तारीख 4 नवंबर, 2020 को पारित आक्षेपित आदेश (उपाबंध-बी) को न्याय के हित में अभिखंडित और अपास्त किया जाए ।

(ख) माननीय न्यायाधीश से निवेदन किया जाता है कि प्रत्यर्थी-प्राधिकारियों, विशेषकर प्रत्यर्थी सं. 3 को परमादेश की रिट जारी करते हुए यह निदेश दिया जाए कि जन्म प्रमाणपत्र तथा जन्म-रजिस्टर में प्रविष्टि किए गए नाम में न्याय के हित के लिए संशोधन किया जाए ;

(ग) *** *** ***

2. याची के विद्वान् काउंसेल श्री ए. आर. कादरी, प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के विद्वान् काउंसेल श्री आर. बी. रावल और प्रत्यर्थी सं. 3 की ओर से हाजिर होने वाली विद्वान् काउंसेल श्रीमती कल्पना रावल की सुनवाई की गई है ।

3. याची की ओर से विद्वान् अधिवक्ता ने याचिका ज्ञापन में किए गए प्रकथनों को निर्दिष्ट किया है और इसके पश्चात् यह दलील दी है कि जन्म प्रमाणपत्र में याची के पुत्र का नाम "जिबरील" लिखा गया है, जबकि आध्यात्मिक गुरु के सुझाव के पश्चात् याची के पुत्र का नाम "जिबरील" से बदलकर "अरसील" कर दिया गया है । यह दलील दी गई है कि याची के पुत्र का नाम ठीक कराया गया है और इसे तारीख 18

जनवरी, 2018 को गुजरात सरकार के राजपत्र में प्रकाशित किया गया है, उक्त राजपत्र की प्रतिलिपि अभिलेख के पृष्ठ सं. 25 पर उपलब्ध है । यह भी दलील दी गई है कि आधार कार्ड तथा विद्यालय में याची के पुत्र का नाम "अरसील" ही लिखा गया है । तत्पश्चात् याची के विद्वान् अधिवक्ता ने यह दलील दी है कि याची ने अपने पुत्र के नाम में शुद्धि लगाने के लिए प्रत्यर्थी सं. 3 से निवेदन किया था, तथापि, प्रत्यर्थी सं. 3 ने संबद्ध प्राधिकारी द्वारा जारी तारीख 18 फरवरी, 2016 के प्रपत्र का अवलंब लेते हुए तारीख 30 जुलाई, 2020 के आक्षेपित आदेश द्वारा याची की प्रार्थना रद्द कर दी । यह दलील दी गई है कि आक्षेपित आदेश पारित करने के पूर्व प्रत्यर्थी सं. 3 ने जन्म और मृत्यु रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1969 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम, 1969" कहा गया है) की धारा 15 और इस अधिनियम के अधीन विरचित नियमों के अन्तर्गत अनुध्यात कोई भी जांच नहीं कराई है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि प्रत्यर्थी ने याची द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेजी साक्ष्य पर भी विचार नहीं किया है ।

4. इस प्रक्रम पर विद्वान् अधिवक्ता ने **राजेशभाई शंभूभाई वोरा** बनाम **गुजरात राज्य**[1] वाले मामले में किए गए विनिश्चय का अवलंब लिया है जो तारीख 12 जनवरी, 2020 को विशेष सिविल आवेदन सं. 13148/2009 में पारित किया गया था । विद्वान् अधिवक्ता ने **सेजलबेन मुकुंदभाई पटेल** बनाम **गुजरात राज्य और एक अन्य**[2] वाले मामले में किए गए इस न्यायालय के विनिश्चय का भी अवलंब लिया है । यह दलील दी गई है कि वर्तमान मामले में जिस मुद्दे पर विचार किया गया है उसको पूर्वोक्त विनिश्चय पूर्ण रूप से लागू होते हैं । अतः विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया है कि प्रत्यर्थी सं. 3 को समुचित निदेश दिया जाए ।

5. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी सं. 3 की ओर से हाजिर होने वाली विद्वान् अधिवक्ता श्रीमती कल्पना रावल ने इस याचिका का विरोध

---

[1] विशेष सिविल आवेदन सं. 13148/2009/12.01.2020

[2] (2019) 3 जी. एल. आर. 1866 = ए. आई. आर. 2019 गुजरात 56.

किया है और तत्पश्चात् यह दलील दी है कि जन्म प्रमाणपत्र में याची के पुत्र का नाम "जिबरील" लिखकर प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा कोई भी कमी नहीं की गई है, इसलिए याची की प्रार्थना, तारीख 18 फरवरी, 2016 के सर्कुलर का अवलंब लेते हुए आक्षेपित आदेश द्वारा खारिज की गई है । इस प्रकार, यह दलील दी गई है कि जब प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा कोई भी त्रुटि कारित नहीं की गई है, तब ऐसी स्थिति में यह न्यायालय वर्तमान याचिका की सुनवाई नहीं कर सकता ।

6. पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् अधिवक्ताओं को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का परिशीलन करने के पश्चात् यह पता चलता है कि अभिलेख में याची के पुत्र का नाम "जिबरील" लिखा गया है, जबकि इसके तत्काल पश्चात् इसमें संशोधन किया गया और संशोधित नाम को 18 जनवरी, 2018 के गुजरात सरकार के राजपत्र में प्रकाशित कराया तथा वही संशोधित नाम आधार कार्ड में भी लिखवाया और इन दोनों दस्तावेजों में याची के पुत्र का नाम "अरसील" ही दिखाई पड़ता है । इसी प्रकार स्कूल के अभिलेख में भी यही नाम पाया गया है ।

7. आक्षेपित आदेश/संसूचना से यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी सं. 3 ने अधिनियम, 1969 तथा इससे संबंधित नियम 11 के अधीन कोई भी जांच कराए बिना संबद्ध प्राधिकारी द्वारा जारी तारीख 18 फरवरी, 2016 के प्रपत्र के आधार पर याची की प्रार्थना खारिज कर दी ।

8. **सेजलबेन मुकुंदभाई पटेल** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने ऐसे ही मुद्दे पर विचार किया है और इस निर्णय के पैरा 22 और 25 में निम्न मत व्यक्त किया है :-

> "22. पूर्वोक्त कानूनी उपबंधों और इस न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चयों से निम्न पहलू उद्भूत होते हैं –
>
> (क) अधिनियम, 1969 की धारा 15 में उल्लिखित "जन्म या मृत्यु की कोई प्रविष्टि प्ररूपत: या सारत: गलत है" अभिव्यक्ति का व्यापक अर्थ है और इसे टंकण की त्रुटि से या लिपिकीय भूल तक ही सीमित नहीं किया जा सकता और

ऐसी प्रविष्टियों को ठीक करने से संबंधित रजिस्ट्रार की शक्ति को किसी भी मार्गदर्शक सिद्धांत या प्रपत्र द्वारा शून्य नहीं किया जा सकता जो रजिस्टर में प्ररूपत: या सारत: गलत हैं जैसाकि अधिनियम, 1969 की धारा 15 और गुजरात राज्य नियम, 2004 के नियम 11(1) से (7) के अधीन परिकल्पित है ।

(ख) अधिनियम, 1969 के उपबंधों के अधीन नियुक्त किए गए रजिस्ट्रार को रजिस्टर में की गई प्रविष्टियों तथा जन्म प्रमाणपत्र में नाम ठीक करने की शक्ति प्राप्त है और ऐसा ठीक करना या रद्द करना अधिनियम, 1969 की धारा 15 के अधीन प्राप्त शक्ति की परिधि में आता है ।

(ग) अधिनियम, 1969 के उपबंधों के अधीन नियुक्त सक्षम प्राधिकारी को इस पर विचार करना चाहिए कि क्या जांच करने और संबद्ध आवेदक द्वारा प्रस्तुत की गई ऐसी सुसंगत सामग्री जिसे अपने समाधान के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा मांगा गया है, का परिशीलन करने के पश्चात् जन्म प्रमाणपत्र/रजिस्टर में की गई प्रविष्टि को ठीक किया जा सकता है या नहीं ।

25. इस प्रकार ऊपर विरचित विवाद्यक सं. (i) का उत्तर यह है कि रजिस्ट्रार, जन्म और मृत्यु और आयुक्त (स्वास्थ्य), गुजरात राज्य द्वारा जारी तारीख 18 फरवरी, 2016 का परिपत्र, कानूनी उपबंधों को अभिभूत नहीं कर सकता और विवाद्यक सं. 2 का उत्तर यह है कि अधिनियम, 1969 के उपबंधों और उसके अन्तर्गत विरचित नियमों के अधीन नियुक्त किया गया सक्षम प्राधिकारी मात्र परिपत्र का ही अवलंब लेकर संबद्ध आवेदक की प्रार्थना को बिना जांच कराए खारिज नहीं कर सकता ।"

9. इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों को दृष्टिगत करते हुए वर्तमान याचिका में विचारणीय मुद्दे को पूर्वोक्त विनिश्चय पूर्ण रूप से लागू होते हैं ।

10. इस प्रक्रम पर प्रत्यर्थी सं. 3 की ओर से हाजिर होने वाली विद्वान् अधिवक्ता श्रीमती कल्पना रावल द्वारा दी गई इस दलील पर भी विचार किया जाना अपेक्षित है कि प्रत्यर्थी सं. 3 ने जन्म प्रमाणपत्र में याची का नाम लिखने में कोई गलती नहीं की है । अत: यदि प्रत्यर्थी सं. 3 याची के जन्म प्रमाणपत्र में संशोधन किया जाना उचित समझता है, तब याची से यह अपेक्षा की जाती है कि वह प्रत्यर्थी सं. 3 को उसकी लागत का संदाय करेगा ।

11. तद्नुसार, प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा तारीख 30 जुलाई, 2020 की संसूचना/आदेश एतद्द्वारा अभिखंडित और अपास्त किए जाते हैं । यह मामला नए सिरे से विनिश्चित किए जाने के लिए प्रत्यर्थी सं. 3 को वापस भेजा जाता है । प्रत्यर्थी सं. 3 याची द्वारा प्रस्तुत किए गए आवेदन/अभ्यावेदन को विनिश्चित करेगा और अधिनियम, 1969 की धारा 15 और उससे संबंधित नियमों के अधीन यथा अनुध्यात जांच कराने और याची द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 3 विधि के अनुसरण में समुचित आदेश पारित करेगा । इस आदेश की प्राप्ति की तारीख से 6 सप्ताह के भीतर प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा जांच कराई जाएगी । यदि प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा याची की प्रार्थना स्वीकार की जाती है, तब याची, जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, प्रत्यर्थी सं. 3 को लागत के रूप में 5,000/- रुपए का संदाय करना होगा ।

12. तद्नुसार, उपरोक्त मताभिव्यक्तियों और निदेशों के साथ वर्तमान याचिका मंजूर की जाती है । इस निर्णय की प्रति सीधे उपलब्ध कराए जाने की अनुमति दी जाती है ।

याचिका मंजूर की गई ।

अस.

विवेक सिंह

बनाम

योगेन्द्र सिंह ठाकुर

(2015 की वैवाहिक प्रथम अपील सं. 105)

तारीख 27 जुलाई, 2021

मुख्य न्यायमूर्ति (कार्यकारी) प्रशांत कुमार मिश्रा और न्यायमूर्ति रजनी दुबे

कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66) – धारा 7 (1), स्पष्टीकरण (ग) – कुटुंब न्यायालय की अधिकारिता – मृतक पुत्री के पिता द्वारा स्त्रीधन वापस लेने की मांग करना – कुटुंब न्यायालय को केवल पति या पत्नी द्वारा फाइल किए गए वाद को सुनने की अधिकारिता है, अतः मृतक पुत्री के पिता द्वारा स्त्रीधन की मांग अधिकारिता रखने वाले सिविल न्यायालय के समक्ष ही की जा सकती है, अन्यथा नहीं ।

यह अपील कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19(1) के अधीन मृत पत्नी (प्रतिमा सिंह) के पति द्वारा विचारण न्यायालय के उस निर्णय और डिक्री को चुनौती देते हुए प्रस्तुत की गई है, जिसके अनुसार अपीलार्थी के श्वसुर द्वारा फाइल किए गए उस वाद को मंजूर किया गया है जिसमें उस संपत्ति को वापस करने की मांग की गई जो उसने अपनी पुत्री प्रतिमा सिंह को अपीलार्थी के साथ हुए विवाह के समय उपहार में दी थी । वाद का विनिश्चय करने के दौरान विचारण न्यायालय ने कुटुंब न्यायालय के समक्ष वाद की पोषणीयता पर अपीलार्थी के इस आक्षेप को भी खारिज कर दिया था कि कुटुंब न्यायालय को वाद का विनिश्चय करने की अधिकारिता नहीं है । कुटुंब न्यायालय के इस निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर अपीलार्थी-पति ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस तथ्य के बावजूद कि उच्चतम न्यायालय एक वाद से उत्पन्न ऐसे विवाद्यक पर विचार कर रहा था, जिसे विवाह-विच्छिन्न

पति या पत्नी में से एक ने प्रस्तुत किया था, यह तय है कि उच्चतम न्यायालय की इतरोक्ति भी उच्च न्यायालय पर बाध्यकारी है । यह मताभिव्यक्ति कि "पति-पत्नी या उनमें से किसी एक की संपत्ति का स्पष्ट रूप से यह अर्थ होगा कि पक्षकारों द्वारा एक दूसरे के पति-पत्नी के रूप में दावा की गई संपत्ति" । इस मामले में के प्रत्यर्थी जो अपीलार्थी की मृत पत्नी का पिता है, द्वारा कुटुंब न्यायालय के समक्ष फाइल वाद को पोषणीय अभिनिर्धारित नहीं किया गया है । कुटुंब न्यायालय की अधिकारिता के अभाव में आक्षेपित निर्णय और डिक्री को अपास्त किया जाता है और प्रत्यर्थी इस मामले को अधिकारिता रखने वाले न्यायालय के समक्ष वाद फाइल करने के लिए स्वतंत्र है । (पैरा 21 और 22)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2016]	(2016) 3 एस. सी. सी. 309 = ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 442 : **बोबिली रामकृष्ण राजा यादव और अन्य** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य द्वारा लोक अभियोजक, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद, आंध्र प्रदेश और एक अन्य** ;	7
[2010]	(2010) 13 एस. सी. सी. 98 = 2010 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 3475 : **मेय जॉर्ज** बनाम **विशेष तहसीलदार और अन्य** ;	7
[2009]	2009 एस. सी. सी. ऑनलाइन केरल 508 = ए. आई. आर. 2009 केरल 138 : **श्यामला देवी** बनाम **सरला देवी और अन्य** ;	7, 18, 20, 21
[2008]	(2008) 5 महाराष्ट्र ला जर्नल 98 = (2008) 2 ए. आई. आर. बंबई आर. (डी. ओ. सी.) 119 बंबई : **राखी देवरंकर** बनाम **जयेन्द्र देवरंकर** ;	7
[2006]	ए. आई. आर. 2006 केरल 187 : **सुप्रभा** बनाम **शिवरमन के. के. और एक अन्य** ;	7

[2005]	2005 एस. सी. सी. ऑनलाइन केरल 345 = ए. आई. आर. 2005 केरल 285 : **लेबी आइजैक** बनाम **लीना एम. नीनन** उर्फ **लिंसी और अन्य** ;	7
[2003]	(2003) 4 एस. सी. सी. 166 = ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 2525 : **के. ए. अब्दुल जलील** बनाम **टी. ए. शाहिदा** ;	7, 20
[2001]	ए. आई. आर. 2001 आंध्र प्रदेश 169 : **पी. श्रीहरि** बनाम **कुमारी पी. सुकुंदा और एक अन्य** ;	7
[1997]	1997 एस. सी. सी. ऑनलाइन केरल 80 = ए. आई. आर. 1997 केरल 231 : **शाइनी** बनाम **जॉर्ज और अन्य** ;	7
[1985]	(1985) 2 एस. सी. सी. 370 = ए. आई. आर. 1985 एस. सी. 628 : **प्रतिभा रानी** बनाम **सूरज कुमार और एक अन्य** ;	7
[1976]	ए. आई; आर. 1976 मद्रास 154 : **ओ. एम. मैयप्पा चेटियर** बनाम **कन्नप्पा चेटियर और अन्य** ;	7
[1958]	ए. आई आर. 1958 एस. सी. 353 : **वर्कमेन ऑफ दीमाकुची टी. एस्टेट** बनाम **द मैनेजमेंट ऑफ दीमाकुची टी. एस्टेट** ।	7

अपीली सिविल अधिकारिता : 2015 की वैवाहिक प्रथम अपील सं. 105.

विचारण न्यायालय (कुटुंब न्यायालय) द्वारा पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री आनंद शुक्ला

प्रत्यर्थी की ओर से श्री प्रसून अग्रवाल

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति (कार्यकारी) प्रशांत कुमार मिश्रा ने दिया ।

मु. न्या. (कार्यकारी) मिश्रा – यह अपील कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "अधिनियम 1984" कहा गया है) की धारा 19 (1) के अधीन मृत पत्नी (प्रतिमा सिंह) के पति द्वारा विचारण न्यायालय के उस निर्णय और डिक्री को चुनौती देते हुए प्रस्तुत की गई है, जिसके अनुसार अपीलार्थी के श्वसुर द्वारा फाइल किए गए उस वाद को मंजूर किया गया है जिसमें उस संपत्ति को वापस करने की मांग की गई जो उसने अपनी पुत्री प्रतिमा सिंह को अपीलार्थी के साथ हुए विवाह के समय उपहार में दी थी ।

2. वाद का विनिश्चय करने के दौरान विचारण न्यायालय ने कुटुंब न्यायालय के समक्ष वाद की पोषणीयता पर अपीलार्थी के इस आक्षेप को भी खारिज कर दिया था कि कुटुंब न्यायालय को वाद का विनिश्चय करने की अधिकारिता नहीं है ।

3. हमारे समक्ष दिए गए तर्क का सारवान् भाग इसी विवाद्यक से संबंधित है, इसलिए हम पहले कुटुंब न्यायालय की अधिकारिता से संबंधित विवाद्यक का निपटारा करेंगे ।

4. मामले के तथ्य, जिन्हें संक्षेप में कथित किया गया है, इस प्रकार हैं कि अपीलार्थी और प्रतिमा सिंह का विवाह तारीख 23 जून, 2007 को हुआ था । प्रतिमा सिंह ने तारीख 3 जनवरी, 2009 को आत्महत्या कर ली थी, जिसके लिए अपीलार्थी के कुटुंब के सदस्यों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 306 के अधीन मामला रजिस्ट्रीकृत किया गया था, लेकिन हमें मृत्यु के कारण या ऐसी मृत्यु के लिए कौन उत्तरदायी है, को जानने से कोई सरोकार नहीं है । अधिनियम, 1984 की धारा 7(1) (ग) के अधीन वर्तमान वाद, प्रत्यर्थी अर्थात् प्रतिमा के पिता द्वारा विवाह के समय अपनी पुत्री को उपहार के रूप में दी गई विभिन्न संपत्तियों को वापस लेने का दावा करते हुए फाइल किया गया है । अपीलार्थी ने इसमें कुटुंब न्यायालय की

अधिकारिता पर आक्षेप किया है । इसके लिए लिखित कथन में जो अतिरिक्त कथन किया गया है वह प्रसन्नता से नहीं किया गया है, तथापि, चूंकि पक्षकारों ने यह मानकर विचारण में भाग लिया है कि आक्षेप का उक्त भाग कुटुंब न्यायालय की अधिकारिता से संबंधित है, न कि केवल उस स्थान से जहां वाद होगा, इसलिए हम कुटुंब न्यायालय के समक्ष वाद की, पोषणीयता से संबंधित आक्षेप की गुणता पर विचार करते हुए अपील का विनिश्चय करेंगे ।

5. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्‌वान् काउंसेल श्री आनंद शुक्ला ने यह दलील दी है कि कुटुंब न्यायालय के पास केवल विवाह के पक्षकारों के मध्य उनकी या उनमें से किसी की भी संपत्तियों के संबंध में वाद या कार्यवाहियों का विनिश्चय करने की अधिकारिता होगी, जैसा कि अधिनियम, 1984 की धारा 7 (1) स्पष्टीकरण (ग) के अधीन उपबंधित हैं, इसलिए वर्तमान वाद जो श्वसुर द्‌वारा फाइल किया गया है और जो विवाह का पक्षकार भी नहीं था, को विनिश्चित करने के लिए कुटुंब न्यायालय को कोई भी अधिकारिता नहीं है ।

6. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्‌वान् काउंसेल श्री प्रसून अग्रवाल ने यह दलील दी है कि "विवाह के पक्षकार" शब्दों का निर्बंधित अर्थ नहीं लगाया जा सकता है । वर्तमान वाद पत्नी के पिता (पति के श्वसुर) द्‌वारा विवाह के समय अपनी पुत्री को उपहार में दिए गए स्त्रीधन की वापसी के लिए है, इसलिए मामले के तथ्य और परिस्थितियों में वादी अपनी मृत पुत्री के स्थान पर है, जो विवाह में पक्षकार थी, इसलिए यह वाद पोषणीय है ।

7. अपनी-अपनी दलीलों के समर्थन में दोनों पक्षकारों के विद्‌वान् काउंसेलों ने **सुप्रभा** बनाम **शिवरमन के. के. और अन्य**[1], **के. ए. अब्दुल जलील** बनाम **टी. ए. शाहिदा**[2], **लेबी आइजैक** बनाम **लीना एम. नीनन** उर्फ **लिंसी और अन्य**[3], **पी. श्रीहरि** बनाम **कुमारी पी. सुकुंदा और एक**

---

[1] ए. आई. आर. 2006 केरल 187.

[2] (2003) 4 एस. सी. सी. 166 = ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 2525.

[3] 2005 एस. सी. सी. ऑनलाइन केरल 345 = ए. आई. आर. 2005 केरल 285.

अन्य[1], **राखी देवरंकर** बनाम **जयेन्द्र देवरंकर**[2], **ओ. एम. मैयप्पा चेटियर** बनाम **कन्नप्पा चेटियर और अन्य,**[3] **वर्कमैन ऑफ दिमाकुची टी. एस्टेट** बनाम **द मैनेजमेंट ऑफ दिमाकुची टी एस्टेट**[4], **बोबिली रामकृष्ण राजा यादव और अन्य** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य द्वारा लोक अभियोजक, आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद, आंध्र प्रदेश और एक अन्य**[5], **श्यामलादेवी** बनाम **सरला देवी और अन्य**[6], **प्रतिभा रानी** बनाम **सूरज कुमार और एक अन्य**[7], **मेय जॉर्ज** बनाम **विशेष तहसीलदार और अन्य**[8] और **शाइनी** बनाम **जॉर्ज और अन्य**[9] वाले मामलों में दिए गए विनिश्चयों विनिश्चयों का अवलंब लिया है ।

8. इससे पूर्व कि हम विवाद्यक पर ध्यान केंद्रित करने के लिए अग्रसर हों, यहां विधि के सुसंगत उपबंधों को उत्कथित करना लाभदायक होगा, जिन्हें दलील देते समय पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों ने निर्दिष्ट किया है ।

9. अधिनियम, 1984 की धारा 7(1) को तत्काल संदर्भ के लिए नीचे उत्कथित किया गया है :–

> 7. **अधिकारिता** – (1) इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, –
>
> > (क) कुटुम्ब न्यायालय को, स्पष्टीकरण में निर्दिष्ट प्रकृति के वादों और कार्यवाहियों की बाबत, तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन किसी जिला न्यायालय या किसी

---

[1] ए. आई. आर. 2001 आंध्र प्रदेश 169.

[2] (2008) 5 महाराष्ट्र ला जर्नल 98 = (2008) 2 ए. आई. आर. बंबई आर. (डी. ओ. सी.) 119 बंबई.

[3] ए. आई. आर. 1976 मद्रास 154.

[4] ए. आई. आर. 1958 एस. सी. 353.

[5] (2016) 3 एस. सी. सी. 309 = ए. आई. आर. 2016 एस. सी. 442.

[6] 2009 एस. सी. सी. ऑनलाइन केरल = 508 ए. आई. आर. 2009 केरल 138.

[7] (1985) 2 एस. सी. सी. 370 = ए. आई. आर. 1985 एस. सी. 628.

[8] (2010) 3 एस. सी. सी. 98 = 2010 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 3475.

[9] 1997 एस. सी. सी. ऑनलाइन केरल 80 = ए. आई. आर. 1997 केरल 231.

अधीनस्थ सिविल न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य पूर्ण अधिकारिता होगी और वह उसका प्रयोग करेगा ;

(ख) कुटुम्ब न्यायालय के बारे में, ऐसी विधि के अधीन ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करने के प्रयोजनों के लिए, यह समझा जाएगा कि वह ऐसे क्षेत्र के लिए, जिस पर कुटुम्ब न्यायालय की अधिकारिता का विस्तार है, यथास्थिति, जिला न्यायालय या अधीनस्थ सिविल न्यायालय है ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा में निर्दिष्ट वाद और कार्यवाहियां निम्नलिखित प्रकृति के वाद और कार्यवाहियां हैं, अर्थात् :–

(क) किसी विवाह के पक्षकार के बीच (विवाह को, यथास्थिति, अकृत और शून्य घोषित करने के लिए या विवाह को बातिल करने के लिए) विवाह की अकृतता या दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन या न्यायिक पृथक्करण या विवाह के विघटन की डिक्री के लिए कोई वाद या कार्यवाही ;

(ख) किसी व्यक्ति के विवाह की विधिमान्यता के बारे में या उसकी वैवाहिक प्रास्थिति के बारे में घोषणा के लिए वाद या कार्यवाही ;

(ग) किसी विवाह के पक्षकार के बीच ऐसे पक्षकारों की या उनमें से किसी की संपत्ति की बाबत कोई विवाद या कार्यवाही ;

(घ) किसी वैवाहिक संबंध से उत्पन्न परिस्थितियों में किसी आदेश या व्यादेश के लिए कोई वाद या कार्यवाही ;

(ङ) किसी व्यक्ति के धर्मजत्व के बारे में किसी घोषणा के लिए कोई वाद या कार्यवाही ;

(च) भरणपोषण के लिए कोई वाद या कार्यवाही ;

(छ) किसी व्यक्ति की संरक्षकता अथवा किसी अवयस्क की अभिरक्षा या उस तक पहुंच के संबंध में कोई वाद या कार्यवाही ।

(2) इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, किसी कुटुम्ब न्यायालय को –

(क) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के अधीन (जो पत्नी, संतान और माता-पिता के भरणपोषण के लिए आदेश के संबंध में है) किसी प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट द्वारा प्रयोक्तव्य अधिकारिता ; और

(ख) ऐसी अन्य अधिकारिता, जो किसी अन्य अधिनियमिति द्वारा उसको प्रदत्त की जाए, भी होगी और वह उसका प्रयोग करेगा ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

10. हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 27 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "अधिनियम, 1955" कहा गया है) को नीचे उत्कथित किया गया है :–

27. **संपत्ति का व्ययन** – इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी भी कार्यवाही में, न्यायालय ऐसी संपत्ति के बारे में, जो विवाह के अवसर पर या उसके आस-पास उपहार में दी गई हो और संयुक्ततः पति और पत्नी दोनों को ही, डिक्री में ऐसा उपबन्धित कर सकेगा, जिन्हें वह न्यायसंगत और उचित समझे ।

11. उपबंधों के पठन मात्र से प्रकट होता है कि अधिनियम, 1984 की धारा 7 के स्पष्टीकरण (ग) के उप-धारा (1) में उल्लिखित प्रकृति के वाद या कार्यवाही को बनाए रखने के लिए, वाद या कार्यवाही को पक्षकारों के बीच या उनमें से किसी एक की संपत्ति के संबंध में होना चाहिए । वर्तमान मामले में, इस संबंध में कोई विवाद नहीं है कि विषयगत संपत्तियां विवाह के समय उपहार में दी गई थीं और इस प्रकार संपत्तियां विवाह के पक्षकारों या उनमें से किसी एक की हैं, इसलिए समुचित विवाद्यक यह होगा कि क्या पत्नी के पिता द्वारा प्रस्तुत किए गए वाद को विवाह के पक्षकार द्वारा प्रस्तुत किए गए वाद के रूप में माना जा सकता है या नहीं ।

12. वर्तमान विवाद्यक का विनिश्चय करने में कई उच्च न्यायालयों द्वारा मत व्यक्त किए गए हैं, इसलिए कुछ विनिश्चयों को यहां निर्दिष्ट करना लाभदायक होगा ।

13. **पी. श्रीहरि** (उपरोक्त) वाले मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ अपने पिता की संपत्ति के विभाजन के लिए अपने भाइयों के विरुद्ध बहनों द्वारा फाइल किए गए विभाजन के वाद की पोषणीयता पर विचार किया । खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि वाद कुटुंब न्यायालय के समक्ष पोषणीय नहीं है, तथा पैरा 5 में यह मत व्यक्त किया गया :–

> "(5) उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, आवश्यक संघटक यह है कि विवाद, <u>पति और पत्नी के बीच होना चाहिए</u> और उक्त विवाद उनकी वैवाहिक स्थिति, विवाह-विच्छेद, दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन, न्यायिक पृथक्करण, बच्चे की अभिरक्षा, पोषणीयता तथा संपत्ति के बंटवारे के संबंध में भी हो सकता है । लेकिन, किसी भी स्थिति में यदि उपरोक्त विवाद नहीं है तब कुटुंब न्यायायल को अधिकारिता नहीं हो सकती । इसकी कल्पना तनिक भी नहीं की जा सकती कि कुटुंब न्यायालय अधिकारिता ग्रहण कर सकता है और यदि विवाद भाइयों, बहनों, माताओं, पिता आदि के बीच संपत्ति से संबंधित हो और उनका मामला वर्तमान मामले जैसा हो तब कुटुंब न्यायालय को स्पष्ट रूप से इसमें कोई अधिकारिता नहीं होगी ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

14. **के. ए. अब्दुल जलील** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने धारा 7 के स्पष्टीकरण (ग) तथा कुटुंब न्यायालय की अधिकारिता को लेकर ऐसे वाद में विचार किया जो विवाह-विच्छिन्न पति या पत्नी द्वारा फाइल किया गया था । उक्त मामले में वाद विवाह-विच्छिन्न पत्नी द्वारा फाइल किया गया था जिसकी पोषणीयता पर पति ने पैरा 8 में निम्नलिखित तर्क देकर प्रतिवाद किया था । पत्नी ने भी पैरा 9 में उक्त तर्क पर प्रतिवाद किया था । पैरा 8 और 9 को यहां पुन: उद्धृत किया गया है :–

> "8. अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री हारिस बीरन ने दलील दी है कि कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 7 में निहित उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, कुटुंब

न्यायालय के पास विवाह-विच्छिन्न पत्नी द्वारा दावा की गई संपत्तियों के संबंध में विवाद का विनिश्चय करने की कोई भी अधिकारिता नहीं है । विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया है कि किसी भी कुटुंब न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाने वाली अधिकारिता, जो विवाह के पक्षकारों के बीच हैं, का अर्थ विद्यमान विवाह के पक्षकारों के बीच होगा । उक्त दलील के समर्थन में अंजुम हसन सिद्दीकी **बनाम** सलमा बी. (ए. आई. आर. 1992 इलाहाबाद 322), और पोन्नावोलू ससिदार **बनाम** उप-रजिस्ट्रार, हयातनगर, (ए. आई. आर. 1992 आंध्र प्रदेश 198) वाले मामलों में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के निर्णय का दृढ़तापूर्वक अवलंब लिया गया है ।

9. दूसरी ओर प्रत्यर्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री टी. एल. वी. अय्यर ने दलील दी है कि यह मामला अब्दुल जलील **बनाम** शाहिदा वाले मामले में केरल उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा पारित एक अंतर-पक्षीय निर्णय के अंतर्गत है । चूंकि अपीलार्थियों ने उक्त निर्णय की सत्यता पर सवाल नहीं किया है, इसलिए अब उसे उससे पलटने और कुटुंब न्यायालय की अधिकारिता को चुनौती देने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है ।”

15. पति और पत्नी द्वारा उत्कथित दलीलों से संव्यवहार करते हुए, उच्चतम न्यायालय ने पैरा 10 से 12 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

(10) कुटुंब न्यायालय अधिनियम को विवाह और कौटुंबिक बातों से संबंधित विवादों और उनसे जुड़े मामलों में सुलह को बढ़ावा देने के लिए और उनके शीघ्र परिनिर्धारण को सुनिश्चित करने की दृष्टि से कुटुंब न्यायालयों की स्थापना के लिए अधिनियमित किया गया था । उद्देश्यों और कारणों के परिशीलन से, ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त अधिनियम, अन्य बातों के साथ-साथ, पति-पत्नी या उनमें से किसी एक की संपत्ति से संबंधित मामला भी अनन्य रूप से कुटुंब न्यायालय की अधिकारिता के अंतर्गत आता है ।

अधिनियम की धारा 7 वादों और कार्यवाहियों के संबंध में कुटुंब न्यायालय की अधिकारिता का उपबंध करता है, जैसा कि उसके साथ संलग्न स्पष्टीकरण से संदर्भित है । धारा 7 से जुड़ा स्पष्टीकरण (ग) विवाह के पक्षकारों के बीच पक्षकारों या उनमें से किसी एक की संपत्ति के संबंध में वाद या कार्यवाही को संदर्भित करता है ।

(11) मामले की वास्तविकता, जैसा कि इसमें इसके पूर्व विचार किया गया है, स्पष्ट रूप से यह दर्शाती है कि विवाह के पक्षकारों के बीच विवाद पति और पत्नी द्वारा एक दूसरे के विरुद्ध दावा की गई संपत्तियों से उत्पन्न हुआ था । इसमें प्रत्यर्थी ने इस आशय का स्पष्ट बयान दिया है कि संपत्तियों को नकद में संदत्त की गई राशि से या आभूषणों के माध्यम से क्रय किया गया था और वाद की अनुसूची 'क' और 'ख' में वर्णित संपत्तियों को क्रय करने के प्रतिफल का स्रोत उसी से वहन किया गया था, अपीलार्थी इसके संबंध में केवल न्यासी था और वह उस पर किसी भी स्वतंत्र हित का दावा नहीं कर सकता था । यह भी स्पष्ट है कि प्रदर्श क-1 के रूप में चिह्नित समझौता तारीख 17 सितंबर, 1994 को निष्पादित किया गया था, तथा अपीलार्थी ने तारीख 1 नवंबर, 1995 को तलाक दी थी । इस न्यायालय के विचार में 'विवाह और कौटुंबिक बातों से संबंधित विवाद तथा उससे जुड़े मामलों में' शब्दों का व्यापक रूप से अर्थान्वयन किया जाना चाहिए । <u>उद्देश्यों और कारणों से, जैसा कि इसमें इसके पूर्व निर्दिष्ट किया गया है, स्पष्ट रूप से यह प्रदर्शित होता है, कि कुटुंब न्यायालय की अधिकारिता अन्य बातों के साथ-साथ पति-पत्नी या उनमें से किसी एक की संपत्तियों के संबंध में विस्तारित होती है, जिसका स्पष्ट रूप से यह अर्थ होगा कि पक्षकारों द्वारा एक दूसरे के पति/पत्नी के रूप में संपत्तियों के लिए दावा किया गया है तथा इस बात पर ध्यान नहीं दिया गया है कि दावा विवाह के अस्तित्व में रहने के दौरान किया गया था या अन्यथा किया गया था</u> ।

12. विद्वान् काउंसेल की इस आशय की दलील कि इस न्यायालय को 'विवाह के पक्षकारों के बीच वाद या कार्यवाही' शब्दों को विवाह के अस्तित्व में के पक्षकारों के रूप में पढ़ना चाहिए, हमारी सुविचारित राय में यह न्यायहानि का कारण बनेगा ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

16. **सुप्रभा** (उपरोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित करते हुए कि पति-पत्नी में से किसी एक के माता-पिता द्वारा प्रस्तुत किया गया वाद धारा 7 के स्पष्टीकरण (ग) के अधीन पोषणीय नहीं है, केरल उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने पैरा 5 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

5. जब पति या पत्नी में से कोई एक जीवित न हो और वाद उनमें से किसी एक के माता-पिता के विरुद्ध फाइल किया गया है, तो यह नहीं कहा जा सकता है, कि यह वाद या कार्यवाही विवाह के पक्षकारों के बीच है । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने रामनाथ द्वारा लिखित पुस्तक "रामनाथ अय्यर्स के लॉ लेक्सिकॉन" में 'पक्षकार' शब्द के अर्थ का अवलंब लिया है जो इस प्रकार है : "वह व्यक्ति जो किसी कार्य के पालन में भाग लेता है, या जो किसी भी कार्यकलाप संविदा या हस्तांतरण में हितबद्ध है या जो किसी भी विधिक कार्यवाही के अभियोजन और प्रतिरक्षा सक्रिया रूप से संबंधित है" । दूसरी ओर प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने "ब्लैक्स लॉ डिक्शनरी" में "पक्षकारों" शब्द के अर्थ का अवलंब लिया है, जिसे इस प्रकार से पढ़ा जाए : "वह व्यक्ति जो किसी भी कार्य के पालन में भाग लेता है, या जो किसी भी कार्यकलाप, संविदा या हस्तांतरण में सक्रिया रूप से हितबद्ध है, या जो किसी भी विधिक कार्यवाही के अभियोजन और प्रतिरक्षा में सक्रिय रूप से संबद्ध है ।" हमारी राय है कि धारा 7 (ग) के संदर्भ में "विवाह के पक्षकार" शब्दों के अर्थ का इतना व्यापक निर्वचन नहीं किया जा सकता है कि उसमें उन सभी लोगों को सम्मिलित किया जा सके जो पति-पत्नी के कल्याण में रुचि रखते हैं, या जो विवाह समारोह में भाग लेते हैं इसलिए, पक्षकारों या उनमें से किसी एक की संपत्तियों से

संबद्ध वाद या कार्यवाही पति और पत्नी के बीच होनी चाहिए । इस प्रकार हमारी राय है कि अधिनियम की धारा 7(ग) ऐसे मामलों में लागू नहीं होती है और कुटुंब न्यायालय ने ऐसा अभिनिर्धारित करके न्यायोचित किया था ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है ।)

17. **श्यामलादेवी** (उपरोक्त) वाले मामले में केरल उच्च न्यायालय की एक अन्य खंड न्यायपीठ द्वारा दिए गए पश्चात्वर्ती विनिश्चय में उक्त उच्च न्यायालय द्वारा **सुप्रभा** (उपरोक्त) में दिए गए पूर्ववर्ती निर्णय के पैरा 8, 11 और 12 को निम्नलिखित रूप से स्पष्ट और सुभिन्न किया है :–

(8) याची की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने श्रीहरि **बनाम** सुकुंडा [(2002) 1 के. एल. टी. 101 = ए. आई. आर. 2001 ए. पी. 169] वाले मामले में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की न्यायपीठ के विनिश्चय को निर्दिष्ट किया है । यहां कुटुंब के सदस्यों के बीच संपत्ति को लेकर एक विवाद कुटुंब न्यायालय के समक्ष समाधान के लिए आया था । इसमें पति और पत्नी में से कोई एक मुकदमे में पक्षकार नहीं था । इसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि यह वाद कभी भी कुटुंब न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में नहीं आ सकता है । तथ्यों से पता चलता है कि मामला पति-पत्नी के नातेदारों के बीच विवाद का था । तथापि, विवाद के संबंध में तथ्यात्मक विवरण और जिस प्रकार से विवाद उत्पन्न हुआ था, परिशीलन के लिए उक्त विनिश्चय में उपलब्ध नहीं है । **सुप्रभा** बनाम **शिवरामन** [(2006) 1 के. एल. टी. 712 = ए. आई. आर. 2006 केरल 187] में इस न्यायालय की एक खंड न्यायपीठ ने अभिनिर्धारित किया कि 'जब या तो पति या पत्नी में से कोई भी जीवित नहीं है और वाद उनमें से किसी एक के माता-पिता के विरुद्ध फाइल किया गया है, तो वहां यह नहीं कहा जा सकता कि यह वाद या कार्यवाही विवाह के पक्षकारों के बीच है और इसलिए यह अधिनियम के खंड 7(ग) के अधीन नहीं आ सकता है । यह अभिनिर्धारित किया गया है कि विवाह के समय दिए गए सोने के

आभूषणों और नकदी आदि को वापस करने के दावे की सुनवाई करने के लिए कुटुंब न्यायालय को अधिकारिता है, यद्यपि जिस समय मामला फाइल किया गया था उस समय पति-पत्नी में से एक जीवित नहीं था । इस प्रकार भले ही पति-पत्नी में से एक जीवित न हो, यदि विवाद की प्रकृति धारा 7(घ) के अंतर्गत आती है, तब भी यह कुटुंब न्यायालय की अधिकारिता के अधीन आएगा । यह विपरीत दृष्टिकोण अपनाने वाले आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के विनिश्चय का सीधा उत्तर है ।

(11) जैसा कि हमने पहले ही बताया है कि स्पष्टीकरण (क) से (छ) में अंतर्विष्ट विभिन्न खंडों की स्पष्ट भाषा को विवाह के अस्तित्व में रहने के दौरान या उसके पश्चात् विवाह के पक्षकारों के परिरुद्ध करने वाले विवाद तक सीमित नहीं किया जा सकता है । कुछ विवाद उनमें से एक की मृत्यु के पश्चात् भी उत्पन्न हो सकते हैं । यह स्पष्टीकरण 7 के खंड (ख) में प्रयुक्त किए गए शब्दों की भाषा से स्पष्ट है । जबकि खंड (क) और कई अन्य खंडों जिनका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं, से यह दर्शित होता है कि विचाराधीन विवाद की प्रकृति पति-पत्नी के बीच वाली हो सकती हैं, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता है कि खंड (ग), (घ) और (छ) के अधीन निर्दिष्ट विवाद विवाह के पक्षकारों तक ही परिरुद्ध रहेंगे । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि किसी वाद या व्यादेश की कार्यवाही वैवाहिक संबंध से उत्पन्न हो सकती है, लेकिन यह आवश्यक नहीं कि यह पति-पत्नी के बीच ही हो ।

12. .... दूसरी ओर पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध यह दावा करते हुए विवाद किया जा सकता है कि कोई संपत्ति विशेष उसकी है न कि उसके पति की या यह कि उसने संपत्ति के अर्जन में योगदान किया था, भले ही वह संपत्ति पति के नाम पर है । कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान, यदि पति की मृत्यु हो जाती है, तो कुटुंब न्यायालय द्वारा कार्यवाही में विचारण करने का उपशमन या अंत नहीं हो जाता है । इसे पति के वारिसों द्वारा स्वयं को पति के स्थान पर रखने का दावा करने वाले या मामले में

अभियोग चलाने में रुचि रखने वालों द्वारा जारी रखा जाएगा । इसलिए, किसी को यह कहने के लिए तथ्यात्मक स्थिति की परीक्षा करनी होगी कि क्या विवाद या दावा एक या अन्य श्रेणी के अधीन आता है, जो कि धारा 7 खंड (क) से (छ) में उल्लिखित हैं । इस मामले में, प्रथम प्रत्यर्थी यह घोषणा करने की ईप्सा करना चाहता है कि वह भास्कर पिल्लई की पत्नी है और द्वितीय प्रत्यर्थी उस विवाह से जन्मे बच्चे का दावा करता है । इसलिए, अनुतोष के लिए उनके द्वारा किया गया दावा पूर्ण रूप से धारा 7 के खंड (घ) के अधीन आता है, भले ही विवाद भास्कर पिल्लई की मृत्यु के पश्चात् सृजित हुआ हो ।

18. इस प्रकार **श्यामलादेवी** (उपरोक्त) वाले मामले में केरल उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि धारा 7(1) के स्पष्टीकरण (ग) में उल्लिखित प्रकृति का वाद विवाह के पक्षकारों तक ही सीमित नहीं हो सकता है और दिए गए मामले में कोई भी व्यक्ति, जो विवाह में पक्षकार नहीं था, इस प्रकार के वाद को बनाए रख सकता है ।

19. **शाइनी** (उपरोक्त) वाले मामले में केरल उच्च न्यायालय की पूर्वतर एकल न्यायपीठ के निर्णय में कुटुंब न्यायालय ने पत्नी द्वारा श्वसुर के विरुद्ध स्वयं को या अपने पति को या विवाह के समय संयुक्त रूप से उपहार के रूप में दी गई कुछ रकम के संबंध में फाइल वाद को सिविल न्यायालय को अंतरित कर दिया था । कुटुंब न्यायालय के उस आदेश को अपास्त करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि वाद का विचारण कुटुंब न्यायालय द्वारा किया जा सकता है, भले ही उनमें से एक पक्षकार विवाह में पक्षकार न रहा हो, पैरा 10 में यह अनुपालन किया गया है :-

> "10. इस पर मुझे शंका है कि क्या विद्वान् न्यायाधीश का यह अभिनिर्धारित करना सही था कि पति और श्वसुर के दायित्व एक दूसरे से स्वतंत्र हैं । वाद में किए गए दावों में से एक दावा विवाह के समय या प्रथम प्रत्यर्थी के साथ याची के विवाह से ठीक पहले स्त्रीधन के रूप में ही संदत्त की गई रकम की वसूली के

लिए है । यह रकम विवाह के संबंध में दी गई थी । पत्नी द्वारा किया गया दूसरा दावा आभूषणों के मूल्य, उसके द्वारा पति को न्यस्त की गई रकम की और अपने भूतपूर्व भरणपोषण की वसूली के लिए था । तथ्य यह है कि पत्नी द्वारा पति को आभूषण उस समय से भिन्न समय पर न्यस्त की गई होगी जब स्त्रीधन की रकम श्वसुर के हाथों में न्यस्त किया गया होगा और पत्नी की उस अतिरिक्त रकम को पति के हाथों में उस समय नहीं दी गई थी जिस समय स्त्रीधन श्वसुर को दिया गया था और ऐसा होने पर यह कहा जा सकता है कि ये दावे श्वसुर के विरुद्ध किए गए दावों से किसी भी तरह अलग नहीं है क्योंकि ये सभी दावे पत्नी और पति के बीच पैदा हुए वैवाहिक विवाद से सृजित हैं जिसके कारण पति द्वारा दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए एक आवेदन फाइल भी किया गया है और पत्नी द्वारा वर्तमान वाद फाइल किया गया है तथा 2016 का विवाह विषयक मामला सं. 236 पति के विरुद्ध भरणपोषण का दावा करते हुए फाइल किया गया है । इसलिए यह पति-पत्नी के बीच विवाह और कुटुंब मामलों से संबंधित एक स्पष्ट विवाद है और इसलिए यह स्पष्ट रूप से कुटुंब न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आता है । कुटुंब न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण अनावश्यक रूप से संकीर्ण है और यह कुटुंब न्यायालयों की स्थापना के मूल उद्देश्य को विफल करता है और इससे पति-पत्नी के बीच वैवाहिक विवाद से उत्पन्न होने वाली मुकदमेबाजी को विभिन्न मंचों पर बढ़ जाएगी । इसलिए मैं कुटुंब न्यायाधीश द्वारा अपनाए गए तर्क से सहमत होने की स्थिति में नहीं हूं ।"

20. **श्यामलादेवी** (उपरोक्त) वाले मामले में केरल उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा वर्तमान मामले की तरह कुटुंब न्यायालय के समक्ष पोषणीय समरूप वाद को अभिनिर्धारित करते हुए उच्चतम न्यायालय द्वारा **के. ए. अब्दुल जलील** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 11 में की गई मताभिव्यक्ति को अनदेखा कर दिया गया है जिसमें स्पष्ट रूप से यह मताभिव्यक्ति की गई है कि कथनों के उद्देश्यों और

कारणों से स्पष्ट रूप से यह प्रदर्शित होता है कि कुटुंब न्यायालय की अधिकारिता अन्य बातों के साथ-साथ पति-पत्नी या उनमें से किसी एक की संपत्तियों के संबंध में विस्तारित होती है, जिसका स्पष्ट रूप से यह अर्थ होगा कि पक्षकारों द्वारा एक दूसरे के पति-पत्नी के रूप में संपत्तियों के लिए दावा किया गया है ।

21. इस तथ्य के बावजूद कि उच्चतम न्यायालय एक वाद से उत्पन्न ऐसे विवाद्यक पर विचार कर रहा था, जिसे विवाह-विच्छिन्न पति या पत्नी में से एक ने प्रस्तुत किया था, यह तय है कि उच्चतम न्यायालय की इतरोक्ति भी उच्च न्यायालय पर बाध्यकारी है । यह मताभिव्यक्ति कि "पति-पत्नी या उनमें से किसी एक की संपत्ति का स्पष्ट रूप से यह अर्थ होगा कि पक्षकारों द्वारा एक दूसरे के पति-पत्नी के रूप में दावा की गई संपत्ति" । इसलिए **श्यामलादेवी** (उपरोक्त) वाले मामले में केरल उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा दिए गए विनिश्चय का पालन करना कठिन है ।

22. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, अपील सफल होती है । इस मामले में के प्रत्यर्थी जो अपीलार्थी की मृत पत्नी का पिता है, द्वारा कुटुंब न्यायालय के समक्ष फाइल वाद को पोषणीय अभिनिर्धारित नहीं किया गया है । कुटुंब न्यायालय की अधिकारिता के अभाव में आक्षेपित निर्णय और डिक्री को अपास्त किया जाता है और प्रत्यर्थी इस मामले को अधिकारिता रखने वाले न्यायालय के समक्ष वाद फाइल करने के लिए स्वतंत्र है ।

23. परिणामतः, वर्तमान अपील मंजूर की जाती है और पक्षकार अपने-अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे ।

24. तद्नुसार, डिक्री को पारित की जाए ।

अपील मंजूर की गई ।

अम./अस.

सारिका अक्षय राणाडे

बनाम

अक्षय अरुण राणाडे

(2019 की कुटुंब न्यायालय अपील सं. 122)

तारीख 7 अप्रैल, 2021

न्यायमूर्ति आर. डी. धनुका और न्यायमूर्ति वी. जी. बिष्ट

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 24 और 28 – अपील – पोषणीयता – धारा 24 के अधीन वाद लंबित रहने के दौरान यदि भरणपोषण की खारिजी का आदेश किया जाता है तो उसे धारा 28 के अधीन अपील में चुनौती नहीं दी जा सकती ।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 105 [सपठित कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19] – अपील – पोषणीयता – अपीलार्थी-पत्नी द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि उसका मामला कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के अंतर्गत आता है, अतः उसे संहिता की धारा 105 का लाभ नहीं दिया जा सकता और निचले न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

इस मामले में कुटुंब न्यायालय सं. 5, पुणे के समक्ष स्थानीय आयुक्त (लोकल कमिश्नर) नियुक्त किए जाने के लिए आवेदन (प्रदर्श-77) फाइल किया गया जो तारीख 16 दिसंबर, 2014 के आदेश द्वारा ख़ारिज किया गया, हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 24, 25 और 26 के अधीन भरणपोषण और अन्य अनुतोषों से संबंधित आवेदन (प्रदर्श-285) फाइल किया गया जो 18 जुलाई, 2016 के आदेश द्वारा भागतः मंजूर किया गया, संशोधन आवेदन (प्रदर्श-391) फाइल किया गया जिसे तारीख 8 अगस्त, 2016 के आदेश द्वारा ख़ारिज किया गया, घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "घरेलू हिंसा अधिनियम" कहा गया है) की धारा 18, 19(8), 20 और 22 के अधीन आवेदन (प्रदर्श-403) फाइल किया गया जो तारीख 22 अगस्त,

2016 के आदेश द्वारा ख़ारिज किया गया । इन आक्षेपित आदेशों के द्वारा कुटुंब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश ने आवेदन (प्रदर्श-285) को इस सीमा तक मंजूर किया कि अपीलार्थी-पत्नी की पुत्री को अंतरिम भरणपोषण दिया जाए और शेष सभी आवेदन उपरोक्त अनुसार खारिज कर दिए । कुटुंब न्यायालय के इन सभी आदेशों के विरुद्ध यह अपील फाइल की गई है । इसके पूर्व कि हम इन सभी आवेदनों की विषयवस्तु पर संक्षिप्त रूप से विचार करें, हमारे लिए यह उपदर्शित करना समुचित होगा कि अपीलार्थी-पत्नी द्वारा, हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 के अधीन 2010 की विवाह अर्जी सं. 459 में फाइल किए गए थे जिनमें प्रत्यर्थी-पति को सहयोगी अनुतोष दिया गया था । हमें अभिलेख से यह भी पता चलता है कि उक्त विवाह अर्जी तारीख 16 दिसंबर, 2016 को खारिज हो गई थी । इस अर्जी के खारिज होने के पश्चात् अपीलार्थी-पत्नी द्वारा वर्तमान अपील के माध्यम से आक्षेपित आदेशों को चुनौती दी गई है यद्यपि ये सभी आदेश अलग-अलग तारीखों में, जैसाकि ऊपर उल्लिखित है, अर्जी के लंबित रहने के दौरान पारित किए गए हैं और स्वीकृत रूप से उन आदेशों के अपवाद के रूप में अर्जी के लंबित रहने के दौरान या अन्य किसी पूर्ववर्ती समय बिन्दु पर मुख्य अर्जी के खारिज किए जाने के पूर्व या कुटुंब न्यायालय के समक्ष अर्जी के प्रस्तुत किए जाने के दौरान, विचार नहीं किया गया था । इस मामले में अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 8 फरवरी, 2012 को एक आवेदन (प्रदर्श-77) प्रस्तुत किया जिसमें यह प्रतिवाद किया कि उसने और उसके पति ने प्रभात रोड, पुणे पर स्थित अर्बन को-आपरेटिव बैंक की शाखा में एक संयुक्त लॉकर सं. 569 ले रखा था । अपीलार्थी-पत्नी का स्त्रीधन और उसकी पुत्री सुश्री सिया के आभूषण इस लॉकर में रखे हुए थे जिसकी चाबियां पति के पास हैं । अपीलार्थी-पत्नी के अनुसार लॉकर में रखे हुए सामान की सूची संलग्न की गई है और यह सामान उसकी और उसकी पुत्री की एकमात्र संपत्ति है । चूंकि पति ने चाबियां देने से इनकार कर दिया था, इसलिए पत्नी ने कोर्ट-रिसीवर नियुक्त किए जाने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया जिसमें दोनों पक्षकारों की उपस्थिति में लॉकर खोलने, सामान की सूची बनाने और उस सामान को अपीलार्थी-पत्नी को सौंपे जाने का निवेदन किया । इस आवेदन के विरोध

में प्रत्यर्थी-पति द्वारा तारीख 18 मार्च, 2014 को उत्तर (प्रदर्श-121) फाइल किया गया जिसमें उसने इस बात से पूरी तरह इनकार किया कि लॉकर में रखा हुआ सामान उसकी पत्नी और पुत्री की एकमात्र संपत्ति है और पति ने कोर्ट-कमिश्नर नियुक्त किए जाने का भी घोर विरोध किया । इसके पश्चात् अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 19 जनवरी, 2016 को हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24, 25 और 26 के अधीन स्थायी जीविका, खर्चों की प्रतिपूर्ति, अंतरिम भरणपोषण में वृद्धि, बच्चे को अपनी अभिरक्षा में बनाए रखने तथा वास की सुविधा उपलब्ध कराए जाने हेतु निवेदन किया । प्रत्यर्थी-पति द्वारा दस्तावेज (प्रदर्श-313) के माध्यम से इस आवेदन का भी विरोध किया गया जिसमें यह प्रतिवाद किया गया कि हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24, 25 और 26 के अधीन भरणपोषण का दावा किए जाने के लिए आवश्यक शर्त यह है कि पत्नी का मामला पूर्णत: स्पष्ट अभिवाक् के साथ प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिसमें उसे अपनी आय, निवेश, आस्तियां और अन्य सभी सुसंगत तथ्य प्रकट करने चाहिएं और उसे यह सिद्ध करना चाहिए कि वह किस प्रकार स्वयं का या अपने बच्चे का भरणपोषण अपनी आय से नहीं कर सकती है । इसके अतिरिक्त अधिनियम की धारा 24 के अधीन बच्चे के भरणपोषण का दावा नहीं किया जा सकता और न ही इस अधिनियम की धारा 25 के अधीन स्थायी जीविका उपलब्ध कराई जा सकती है क्योंकि प्रत्यर्थी-पति ने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए अर्जी फाइल की है । अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 27 जुलाई, 2016 को आवेदन (प्रदर्श-391) प्रस्तुत किया जिसमें उसने अपने लिखित कथन में संशोधन करने की ईप्सा की । प्रस्तावित संशोधन द्वारा वह अपने लिखित कथन में कतिपय उन सुझावों को सम्मिलित करना चाहती थी जो उसने उसके और उसके पति के बीच आभूषणों, पति द्वारा उसकी पुत्री को स्कूल से बलपूर्वक ले जाना, क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद का प्रतिदावा करना, पुत्री की अभिरक्षा प्राप्त करना, स्थायी जीविका और स्थायी भरणपोषण की मांग सहित अन्य अनुतोषों को लेकर दांडिक कार्यवाही के दौरान प्रतिपरीक्षा में दिए थे । इस आवेदन का प्रतिरोध 30 जुलाई, 2016 को प्रत्यर्थी-पति द्वारा फाइल किए गए उत्तर के माध्यम से किया गया । प्रत्यर्थी-पति के अनुसार प्रस्तावित संशोधन का संबंध किसी

भी प्रकार से मुद्दों या संविवाद से नहीं था । इसी प्रकार, अपने लिखित कथन के प्रत्युत्तर में पत्नी द्‌वारा कोई भी दस्तावेज फाइल नहीं किया गया क्योंकि ऐसा करना परिसीमा के अधीन स्पष्ट रूप से वर्जित था और वैसे भी वह अपने अभिकथित अधिकारों का अधित्यजन पहले ही कर चुकी थी । अंत में अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 16 अगस्त, 2016 को घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 18, 19(8), 20 और 22 के अधीन आवेदन (प्रदर्श-403) फाइल किया जिसमें संरक्षा आदेश के रूप में इस अनुतोष का दावा किया कि पति को अपीलार्थी का स्त्रीधन वापस करने, धनीय फायदे और प्रतिकर दिए जाने का निदेश दिया जाए । इस आवेदन का विरोध प्रत्यर्थी-पति द्‌वारा तारीख 18 अगस्त, 2016 को किया गया । पति के अनुसार घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 26 के अधीन ऐसा आवेदन फाइल करके अनुतोष पाने की ईप्सा नहीं की जा सकती बल्कि उसके संबंध में अभिवाक् किया जाना चाहिए । पति की ओर से यह भी दलील दी गई कि इस अधिनियम के अधीन ऐसे अनुतोष, जो उक्त अधिनियम के अधीन ही ईप्सित है, से संबंधित फाइल किया गया आवेदन घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 26 के अधीन अनुध्यात नहीं है और जिसका दावा अभिलेख पर उपलब्ध लिखित कथन में भी नहीं किया गया है, अत: आवेदन चलने योग्य नहीं है । कुटुंब न्यायालय के विद्‌वान् न्यायाधीश दोनों पक्षकारों को सुनने और विभिन्न प्रदर्शों का परिशीलन करने के पश्चात् प्रदर्श-285 को मंजूर करते हुए शेष आवेदन खारिज कर दिए । इस आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थी-पत्नी ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – जैसा कि यहां ऊपर देखा गया है, वादाधीन भरणपोषण के ख़ारिज किए जाने का आक्षेपित आदेश अधिनियम की धारा 24 के अधीन किया गया है । अधिनियम की धारा 28 की उपधारा (2) के अधीन यह स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है कि अधिनियम की धारा 24 के अधीन पारित आदेश के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जाएगी । केवल अधिनियम की धारा 25 या 26 के अधीन पारित आदेश को, जो अंतर्वर्ती आदेश नहीं है, उपधारा (2) के अधीन चुनौती दी जा सकती है । उपरोक्त से यह उद्भूत होता है कि, अधिनियम की धारा 24, 25 या 26

के अधीन पारित अंतरिम आदेशों के विरुद्ध, धारा 28 की उपधारा (2) के अधीन उच्च न्यायालय में कोई अपील नहीं की जाएगी । इस उपधारा के अधीन धारा 24 के संदर्भ का लोप जानबूझकर किया गया है और चूंकि यह एक महत्वपूर्ण पहलू है इसलिए यह माना जाना चाहिए कि विधानमंडल स्पष्ट रूप से अधिनियम की धारा 24 के अधीन पारित किसी भी आदेश के विरुद्ध अपील पर रोक लगाना चाहता था । (पैरा 33 और 34)

हमारे समक्ष यहां एक विशेष स्थिति है । हम पहले ही उपदर्शित कर चुके हैं और अपीलार्थी-पत्नी के शब्दों में यह स्वीकृत स्थिति है, यदि हम ऐसा कहें, कि उसका मामला पूरी तरह से कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के अधीन आता है । हमने पूर्वगामी पैराओं में पहले ही यह स्पष्ट किया है कि आक्षेपित आदेश किस प्रकार अंतर्वर्ती आदेश हैं और इस प्रकार कुटुंब न्यायालय की धारा 19 की परिधि और विस्तार के बाहर हैं । इन परिस्थितियों में हमारा यह निष्कर्ष है कि संहिता की धारा 105 की कोई भी प्रयोज्यता और उपयोगिता नहीं है । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित आदेश 41, नियम 33 के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए हम यह दोहराते हैं कि हमारे समक्ष विचार के लिए ऐसी डिक्री नहीं है जिसमें हमारे समक्ष पक्षकारों के अधिकारों के समायोजन के लिए न्याय, समता और अच्छे विवेक के आधार पर हस्तक्षेप करना अपरिहार्य हो । हमें पुन: कहना पड़ रहा है कि दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए पति की ओर से फाइल की गई अर्जी खारिज की गई थी जिसके पश्चात् अब पत्नी को किसी भी प्रकार पुन: समायोजन का अधिकार नहीं है । हमें पुनः कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 का ही अवलंब लेना होगा जिसके कार्यक्षेत्र पर आक्षेपित आदेशों की प्रकृति को लेकर विस्तार से विचार किया गया है । (पैरा 39 और 48)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2010]	(2010) 4 ए. आई. आर. बम्बई आर. 406 : **राजश्री** उर्फ **रजनी और एक अन्य** बनाम **मारिया एलसा डे नोरोन्हा वोल्फांगो डा सिल्वा** ;	9

[2005]	(2005) 4 बम्बई सी. आर. 493 : **श्रीमती अमीशी मिलन होनावर** बनाम **श्री मिलन भवानीशंकर होनावर** ;	9
[2002]	(2002) 7 एस. सी. सी. 447 = ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 649 : **सी. वी. राजेन्द्रन और एक अन्य** बनाम **एन. एम. मुहम्मद कुन्ही** ;	9
[1992]	ए. आई. आर. 1992 गुवाहाटी 72 : **श्री रामो वर्मन और अन्य** बनाम **श्रीमती डगरीप्रिया कचरी और अन्य** ;	9
[1991]	ए. आई. आर. 1991 बम्बई 423 : **सुनील हंसराज गुप्ता** बनाम **पायल सुनील गुप्ता** ;	9
[1982]	ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 98 : **चौधरी शाहू** बनाम **बिहार राज्य** ;	47
[1980]	ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 962 : **वी. सी. शुक्ला** बनाम **राज्य** ;	16
[1979]	ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1436 : **श्रीमती सुखरानी (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और अन्य** बनाम **हरि शंकर और अन्य** ;	9
[1978]	ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 47 : **मधु लिमये** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	16
[1960]	ए. आई. आर. 1960 एस. सी. 941 : **सत्यध्यान घोसल और अन्य** बनाम **श्रीमती दियोर्जिन देवी और एक अन्य** ।	9

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2019 की कुटुंब न्यायालय अपील सं. 122.

कुटुंब न्यायालय सं. 5, पुणे तारीख 16 दिसंबर, 2014, तारीख 18 जुलाई, 2016, तारीख 8 अगस्त, 2016 और तारीख 22 अगस्त, 2016 के आदेशों के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री अभिजीत सरवते

प्रत्यर्थी की ओर से श्री ओमकार परांजपे

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति वी. जी. बिष्ट ने दिया ।

न्या. बिष्ट – कुटुंब न्यायालय सं. 5, पुणे के समक्ष स्थानीय आयुक्त (लोकल कमिश्नर) नियुक्त किए जाने के लिए आवेदन (प्रदर्श-77) फाइल किया गया जो तारीख 16 दिसंबर, 2014 के आदेश द्वारा ख़ारिज किया गया, हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 24, 25 और 26 के अधीन भरणपोषण और अन्य अनुतोषों से संबंधित आवेदन (प्रदर्श-285) फाइल किया गया जो 18 जुलाई, 2016 के आदेश द्वारा भागतः मंजूर किया गया, संशोधन आवेदन (प्रदर्श-391) फाइल किया गया जिसे तारीख 8 अगस्त, 2016 के आदेश द्वारा ख़ारिज किया गया, घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "घरेलू हिंसा अधिनियम" कहा गया है) की धारा 18, 19(8), 20 और 22 के अधीन आवेदन (प्रदर्श-403) फाइल किया गया जो तारीख 22 अगस्त, 2016 के आदेश द्वारा ख़ारिज किया गया । इन आक्षेपित आदेशों के द्वारा कुटुंब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश ने आवेदन (प्रदर्श-285) को इस सीमा तक मंजूर किया कि अपीलार्थी-पत्नी की पुत्री को अंतरिम भरणपोषण दिया जाए और शेष सभी आवेदन उपरोक्त अनुसार खारिज कर दिए । कुटुंब न्यायालय के इन सभी आदेशों के विरुद्ध यह अपील फाइल की गई है ।

2. इसके पूर्व कि हम इन सभी आवेदनों की विषयवस्तु पर संक्षिप्त रूप से विचार करें, हमारे लिए यह उपदर्शित करना समुचित होगा कि अपीलार्थी-पत्नी द्वारा, हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 9 के अधीन 2010 की विवाह अर्जी सं. 459 में फाइल किए गए थे जिनमें प्रत्यर्थी-पति को सहयोगी अनुतोष दिया गया था । हमें अभिलेख से यह भी पता चलता है कि उक्त विवाह अर्जी तारीख 16 दिसंबर, 2016 को खारिज हो गई थी । इस अर्जी के खारिज होने के पश्चात् अपीलार्थी-पत्नी द्वारा वर्तमान अपील के माध्यम से आक्षेपित आदेशों को चुनौती दी गई है यद्यपि ये सभी आदेश अलग-अलग तारीखों में, जैसाकि ऊपर उल्लिखित है, अर्जी के लंबित रहने के दौरान पारित किए गए हैं और

स्वीकृत रूप से उन आदेशों के अपवाद के रूप में अर्जी के लंबित रहने के दौरान या अन्य किसी पूर्ववर्ती समय बिन्दु पर मुख्य अर्जी के खारिज किए जाने के पूर्व या कुटुंब न्यायालय के समक्ष अर्जी के प्रस्तुत किए जाने के दौरान, विचार नहीं किया गया था ।

3. इस मामले में अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 8 फरवरी, 2012 को एक आवेदन (प्रदर्श-77) प्रस्तुत किया जिसमें यह प्रतिवाद किया कि उसने और उसके पति ने प्रभात रोड, पुणे पर स्थित अर्बन को-ऑपरेटिव बैंक की शाखा में एक संयुक्त लॉकर सं. 569 ले रखा था । अपीलार्थी-पत्नी का स्त्रीधन और उसकी पुत्री सुश्री सिया के आभूषण इस लॉकर में रखे हुए थे जिसकी चाबियां पति के पास हैं । अपीलार्थी-पत्नी के अनुसार लॉकर में रखे हुए सामान की सूची संलग्न की गई है और यह सामान उसकी और उसकी पुत्री की एकमात्र संपत्ति है । चूंकि पति ने चाबियां देने से इनकार कर दिया था, इसलिए पत्नी ने कोर्ट-रिसीवर नियुक्त किए जाने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया जिसमें दोनों पक्षकारों की उपस्थिति में लॉकर खोलने, सामान की सूची बनाने और उस सामान को अपीलार्थी-पत्नी को सौंपे जाने का निवेदन किया । इस आवेदन के विरोध में प्रत्यर्थी-पति द्वारा तारीख 18 मार्च, 2014 को उत्तर (प्रदर्श-121) फाइल किया गया जिसमें उसने इस बात से पूरी तरह इनकार किया कि लॉकर में रखा हुआ सामान उसकी पत्नी और पुत्री की एकमात्र संपत्ति है और पति ने कोर्ट-कमिश्नर नियुक्त किए जाने का भी घोर विरोध किया ।

4. इसके पश्चात् अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 19 जनवरी, 2016 को हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24, 25 और 26 के अधीन स्थायी जीविका, खर्चों की प्रतिपूर्ति, अंतरिम भरणपोषण में वृद्धि, बच्चे को अपनी अभिरक्षा में बनाए रखने तथा वास की सुविधा उपलब्ध कराए जाने हेतु निवेदन किया । प्रत्यर्थी-पति द्वारा दस्तावेज (प्रदर्श-313) के माध्यम से इस आवेदन का भी विरोध किया गया जिसमें यह प्रतिवाद किया गया कि हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 24, 25 और 26 के अधीन भरणपोषण का दावा किए जाने के लिए आवश्यक शर्त यह है कि पत्नी का मामला पूर्णत: स्पष्ट अभिवाक् के साथ प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिसमें उसे अपनी आय, निवेश, आस्तियां और अन्य सभी सुसंगत तथ्य प्रकट करने चाहिएं और उसे यह सिद्ध करना चाहिए कि

वह किस प्रकार स्वयं का या अपने बच्चे का भरणपोषण अपनी आय से नहीं कर सकती है । इसके अतिरिक्त अधिनियम की धारा 24 के अधीन बच्चे के भरणपोषण का दावा नहीं किया जा सकता और न ही इस अधिनियम की धारा 25 के अधीन स्थायी जीविका उपलब्ध कराई जा सकती है क्योंकि प्रत्यर्थी-पति ने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए अर्जी फाइल की है ।

5. अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 27 जुलाई, 2016 को आवेदन (प्रदर्श-391) प्रस्तुत किया जिसमें उसने अपने लिखित कथन में संशोधन करने की ईप्सा की । प्रस्तावित संशोधन द्वारा वह अपने लिखित कथन में कतिपय उन सुझावों को सम्मिलित करना चाहती थी जो उसने उसके और उसके पति के बीच आभूषणों, पति द्वारा उसकी पुत्री को स्कूल से बलपूर्वक ले जाना, क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद का प्रतिदावा करना, पुत्री की अभिरक्षा प्राप्त करना, स्थायी जीविका और स्थायी भरणपोषण की मांग सहित अन्य अनुतोषों को लेकर दांडिक कार्यवाही के दौरान प्रतिपरीक्षा में दिए थे । इस आवेदन का प्रतिरोध 30 जुलाई, 2016 को प्रत्यर्थी-पति द्वारा फाइल किए गए उत्तर के माध्यम से किया गया । प्रत्यर्थी-पति के अनुसार प्रस्तावित संशोधन का संबंध किसी भी प्रकार से मुद्दों या संविवाद से नहीं था । इसी प्रकार, अपने लिखित कथन के प्रत्युत्तर में पत्नी द्वारा कोई भी दस्तावेज फाइल नहीं किया गया क्योंकि ऐसा करना परिसीमा के अधीन स्पष्ट रूप से वर्जित था और वैसे भी वह अपने अभिकथित अधिकारों का अधित्यजन पहले ही कर चुकी थी ।

6. अंत में अपीलार्थी-पत्नी ने तारीख 16 अगस्त, 2016 को घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 18, 19(8), 20 और 22 के अधीन आवेदन (प्रदर्श-403) फाइल किया जिसमें संरक्षा आदेश के रूप में इस अनुतोष का दावा किया कि पति को अपीलार्थी का स्त्रीधन वापस करने, धनीय फायदे और प्रतिकर दिए जाने का निदेश दिया जाए । इस आवेदन का विरोध प्रत्यर्थी-पति द्वारा तारीख 18 अगस्त, 2016 को किया गया । पति के अनुसार घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 26 के अधीन ऐसा आवेदन फाइल करके अनुतोष पाने की ईप्सा नहीं की जा सकती बल्कि उसके संबंध में अभिवाक् किया जाना चाहिए । पति की ओर से यह भी

दलील दी गई कि इस अधिनियम के अधीन ऐसे अनुतोष, जो उक्त अधिनियम के अधीन ही ईप्सित है, से संबंधित फाइल किया गया आवेदन घरेलू हिंसा अधिनियम की धारा 26 के अधीन अनुध्यात नहीं है और जिसका दावा अभिलेख पर उपलब्ध लिखित कथन में भी नहीं किया गया है, अत: आवेदन चलने योग्य नहीं है ।

7. कुटुंब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश दोनों पक्षकारों को सुनने और विभिन्न प्रदर्शों का परिशीलन करने के पश्चात् प्रदर्श-285 को मंजूर करते हुए शेष आवेदन खारिज कर दिए ।

8. इस न्यायालय (न्यायमूर्ति के. के. ततेड़ और न्यायमूर्ति एन. आर. बोरकर) ने तारीख 13 अक्तूबर, 2020 को अपीलार्थी-पत्नी के विद्वान् काउंसेल से यह प्रश्न पूछा कि धारा 19 के अधीन फाइल की गई वर्तमान अपील, कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित अंतरिम आदेशों को आक्षेपित करते हुए चलने योग्य है । इस न्यायालय ने तारीख 13 अक्तूबर, 2020 के आदेश द्वारा अपीलार्थी-पत्नी को इस संबंध में साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए कि वर्तमान अपील चलने योग्य कैसे है, अपना लिखित कथन, यदि कोई है, फाइल करने का निदेश दिया और साथ ही इस संबंध में प्रत्यर्थी-पत्नी को यह अधिकार दिया कि वह लिखित दलीलें, यदि कोई हैं, प्रस्तुत कर सकती है ।

9. उपरोक्त निदेश/आदेश के अनुसरण में अपीलार्थी-पत्नी ने इस साक्ष्य के साथ अपना शपथपत्र-सह-लिखित कथन फाइल किया है कि वर्तमान अपील किस प्रकार चलने योग्य है । अपीलार्थी-पत्नी ने **श्रीमती सुखरानी (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और अन्य** बनाम **हरि शंकर और अन्य**[1], **सी. वी. राजेन्द्रन और एक अन्य** बनाम **एन. एम. मुहम्मद कुन्ही**[2], **सत्यध्यान घोसल और अन्य** बनाम **श्रीमती दियोर्जिन देवी और एक अन्य**[3], **राजश्री** उर्फ **रजनी और एक अन्य** बनाम **मारिया एलसा डे नोरोन्हा वोल्फांगो डा सिल्वा**[4] और **श्री रामो वर्मन और अन्य** बनाम

---

[1] ए. आई. आर. 1979 एस. सी. 1436.

[2] (2002) 7 एस. सी. सी. 447 = ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 649.

[3] ए. आई. आर. 1960 एस. सी. 941.

[4] (2010) 4 ए. आई. आर. बम्बई आर. 406.

श्रीमती डगरीप्रिया कचरी और अन्य[1] वाले मामलों का अवलंब लिया । इसी प्रकार, प्रत्यर्थी-पति ने भी अपने इस पक्षकथन के समर्थन में निर्णयों की प्रति के साथ लिखित कथन फाइल किया है कि अपील चलने योग्य नहीं है । प्रत्यर्थी-पति ने **सुनील हंसराज गुप्ता** बनाम **पायल सुनील गुप्ता**[2] और **श्रीमती अमीशी मिलन होनावर** बनाम **श्री मिलन भवानीशंकर होनावर**[3] (न्यायमूर्ति आर. एम. एस. खण्डेपरकर और अनूप वी. मोहटा, तारीख 14 जून, 2005 को विनिश्चित कुटुंब न्यायालय अपील सं. 7) ।

10. हमने लिखित कथन और उपरोक्त निर्णयों का परिशीलन किया है । हमने अपीलार्थी-पत्नी के विद्वान् काउंसेल श्री सरवते और प्रत्यर्थी-पति के विद्वान् श्री परांजपे को सुना है । इन्होंने पक्षकारों द्वारा दिए गए लिखित कथनों की व्यावहारिक रूप से पुनरावृत्ति की है ।

11. इस संबंध में मुश्किल से ही कोई विवाद है कि पक्षकारों को कुटुंब न्यायालय अधिनियम के उपबंध लागू होते हैं । लिखित कथन में भी अपीलार्थी-पत्नी ने पैरा 9 में यह प्रतिवाद किया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 43, नियम 1 के अधीन यह अनुध्यात नहीं है कि आक्षेपित आदेश के विरुद्ध अपील की जाए । इसके अतिरिक्त इस तथ्य पर विचार करते हुए कि यह कार्यवाही कुटुंब न्यायालय द्वारा की गई है, इसलिए कुटुंब न्यायालय अधिनियम जैसी विशेष विधि लागू होगी ।

12. प्रत्यर्थी-पति की ओर से वर्तमान अपील में प्राथमिक आक्षेप इस संबंध में किए गए हैं कि दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान आक्षेपित आदेश पारित किए गए हैं और चूंकि पक्षकारों के वे अधिकार तय नहीं किए गए हैं जिनके आधार पर मुख्य मुद्दा विनिश्चित किया जाता, कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19(1) के अर्थान्तर्गत अंतर्वर्ती आदेश हैं, इसलिए विधि के उक्त उपबंधों के अधीन कोई भी अपील प्रस्तुत नहीं की जा सकती । प्रत्यर्थी-

---

[1] ए. आई. आर. 1992 गुवाहाटी 72.

[2] ए. आई. आर. 1991 बम्बई 423.

[3] (2005) 4 बम्बई सी. आर. 493.

पति के विद्वान् काउंसेल ने **सुनील हंसराज गुप्ता** (उपरोक्त) और **श्रीमती अमीशी मिलन होनावर** (उपरोक्त) वाले मामलों का अवलंब लिया है ।

13. इसके प्रतिकूल, अपीलार्थी-पत्नी के विद्वान् काउंसेल ने दृढ़तापूर्वक यह दलील दी है कि आक्षेपित आदेशों को "अंतर्वर्ती आदेश" नहीं कहा जा सकता क्योंकि इन आदेशों से अपीलार्थी-पत्नी के सारभूत अधिकार प्रभावित होते हैं और ऐसा होने पर आक्षेपित आदेशों को अंतरिम आदेश नहीं कहा जा सकता । सत्यधान घोसल और अन्य (उपरोक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लिए जाने की ईप्सा की गई है ।

14. उपरोक्त पृष्ठभूमि में कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के अधीन धारा 19 की महत्ता उचित परिप्रेक्ष्य में उपधारित की गई है । यह धारा निम्न प्रकार है :-

> "19. **अपील** - (1) उपधारा (2) में जैसा उपबंधित है उसके सिवाय और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में या दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, किसी कुटुंब न्यायालय के प्रत्येक निर्णय या आदेश की, जो अंतर्वर्ती आदेश नहीं है, अपील उच्च न्यायालय में तथ्यों और विधि, दोनों के संबंध में होगी ।
>
> (2) कुटुंब न्यायालय द्वारा पक्षकारों की सहमति से पारित किसी डिक्री या आदेश की या दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के अधीन पारित किसी आदेश की कोई अपील नहीं होगी :
>
> परंतु इस धारा की कोई बात कुटुंब न्यायालय (संशोधन) अधिनियम, 1991 के प्रारंभ के पूर्व किसी उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित किसी अपील या दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के अधीन पारित किसी आदेश को लागू नहीं होगी ।
>
> (3) इस धारा के अधीन प्रत्येक अपील, किसी कुटुंब न्यायालय के निर्णय या आदेश की तारीख से 30 दिन की अवधि के भीतर की जाएगी ।

(4) उच्च न्यायालय, स्वप्रेरणा से या अन्यथा, ऐसी किसी कार्यवाही का, जिसने उसकी अधिकारिता के भीतर स्थित कुटुंब न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के अधीन कोई आदेश पारित किया है, अभिलेख, उस आदेश को, जो अंतर्वर्ती आदेश न हो, तथ्यत:, वैधता या औचित्य के बारे में और ऐसी कार्यवाही की नियमितता के बारे में अपना समाधान करने के प्रयोजन के लिए मंगा सकता है और उसकी परीक्षा कर सकता है ।

(5) जैसा ऊपर कहा गया है उसके सिवाय, किसी कुटुंब न्यायालय के किसी निर्णय, आदेश या डिक्री की किसी न्यायालय में कोई अपील या पुनरीक्षण नहीं होगा ।

(6) उपधारा (1) के अधीन की गई किसी अपील की सुनवाई दो या अधिक न्यायाधीशों से मिलकर बनी किसी न्यायपीठ द्वारा की जाएगी ।"

15. इस उपबंध का सरसरी तौर पर परिशीलन करने पर यह अधिक स्पष्ट नहीं होता है कि प्रत्येक निर्णय या आदेश, जो कुटुंब न्यायालय का अंतर्वर्ती आदेश है, के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष अपील तथ्यों और विधि अर्थात् दोनों के आधार पर की जा सकती है । उपधारा (4) के अधीन कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण शक्ति का उपबंध किया गया है जिसकी ओर तुरंत ध्यान जाता है वह यह है कि उच्चतम न्यायालय को पुनरीक्षण शक्ति प्राप्त होने पर भी वह अंतर्वर्ती आदेश के संबंध में उसका प्रयोग नहीं कर सकता क्योंकि उपधारा (4) के अधीन इस संबंध में अनुध्यात कानूनी वर्जन है । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कुटुंब न्यायालय द्वारा पारित किसी भी अंतर्वर्ती आदेश के विरुद्ध न तो अपील की जा सकती है और न ही कोई पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया जा सकता है । इससे "अंतर्वर्ती आदेश" के प्रभाव से संबंधित प्रश्न सामने आता है । कुटुंब न्यायालय अधिनियम में हमें कहीं भी "अंतर्वर्ती आदेश" की परिभाषा दिखाई नहीं देती है ।

16. **मधु लिमये** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] और **वी. सी. शुक्ला** बनाम **राज्य**[2] वाले मामलों में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चयों को उद्धृत करना लाभप्रद होगा जिनका अवलंब **सुनील हंसराज गुप्ता** (उपरोक्त) और **श्रीमती अमीशी मिलन होनावर** (उपरोक्त) वाले मामलों में प्रत्यर्थी-पति के विद्वान् काउंसेल द्वारा भी लिया गया है ।

17. **मधु लिमये** (उपरोक्त) वाले मामले में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि "अंतर्वर्ती आदेश" अभिव्यक्ति का आम तौर पर अर्थ "अंतिम आदेश" के विपरीत लगाया जाता है । यह भी अभिनिर्धारित किया गया है कि वह आदेश जो पक्षकारों के अंतिम अधिकारों से सम्बंधित नहीं है बल्कि वह या तो निर्णय के पूर्व दिया जाता है अर्थात् विवादित मामले पर कोई अंतिम निर्णय नहीं देता है बल्कि केवल प्रक्रिया से सम्बंधित होता है या (ii) निर्णय के बाद दिया जाता है और केवल यह निदेश देता है कि अंतिम निर्णय में पहले से ही दिए गए अधिकारों की घोषणा को किस प्रकार कार्यान्वित किया जाए, अंतर्वर्ती आदेश कहा जाता है ।

18. **वी. सी. शुक्ला** (उपरोक्त) वाले मामले में इस विषय पर विभिन्न निर्णयों का सार लेने के बाद, माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णय के पैरा 21 में निम्न मत व्यक्त किया :–

> "21 ....अंतिम निर्णय ऐसे होते हैं जो तुरंत यह घोषित करके कार्रवाई का समापन कर देते हैं कि वादी ने या तो स्वयं को उस उपाय को पुनर्प्राप्त करने का हकदार बना लिया है, जिसके लिए उसने मामला फाइल किया है.............. किसी निर्णय या आदेश की अंतिमता सुनिश्चित करने के लिए चार अलग-अलग परीक्षण सुझाए गए हैं :
>
> > (1) क्या किसी आवेदन पर आदेश इस तरह किया गया था कि किसी भी पक्षकार के पक्ष में निर्णय मुख्य विवाद्यक का निर्धारण करेगा ?

---

[1] ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 47.

[2] ए. आई. आर. 1980 एस. सी. 962.

(2) क्या यह आदेश उस आवेदन पर किया गया था जिस पर मुख्य विवाद का निर्णय लिया जा सकता था ?

(3) क्या आदेश, जैसा किया गया था, विवाद का निर्धारण करता है ?

(4) यदि प्रश्नगत आदेश उलट दिया गया है तब क्या कार्रवाई जारी रहेगी ?"

उपरोक्त निर्णय के पृष्ठ 978 पर पैरा 23 में यह अभिनिर्धारित किया गया था :-

"23 इस प्रकार, एक अंतर्वर्ती आदेश के प्राकृतिक और तार्किक अर्थ को संक्षिप्त करते हुए यही निष्कर्ष निकलता है कि एक आदेश जो कार्यवाही का समापन नहीं करता है या अंततः पक्षकारों के अधिकारों को विनिश्चित नहीं करता है वह केवल एक अंतर्वर्ती आदेश है । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि, अंतर्वर्ती आदेश का सामान्य रूप से वह आदेश है जो किसी कार्यवाही, मामले या मामले के किसी विशेष पहलू या किसी विशेष मुद्दे या किसी विशेष बिंदु को विनिश्चित तो करता है किन्तु मामले को बिल्कुल भी समाप्त नहीं करता है । ......"

विभिन्न नजीरों का पुनर्विलोकन करने के पश्चात् न्यायमूर्ति फ़ज़ल अली ने निर्णय के पृष्ठ 982 पर पैरा 30 में निम्न मत व्यक्त किया :-

"30 .....इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि फेडेरल न्यायालय ने अपने निर्णय में दो सिद्धांतों को स्वीकार किया है, अर्थात्, -

(1) यह कि अंतिम आदेश को एक अंतर्वर्ती आदेश से भिन्न माना जाना चाहिए ; और

(2) यह कि किसी आदेश की अंतिमता का निर्धारण करने के लिए परीक्षण यह है कि क्या अंततः निर्णय या देश द्वारा पक्षकारों के अधिकारों का निपटान किया गया है ।"

तत्पश्चात्, माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्णय के पैरा 33 में, इन मताभिव्यक्तियों को निम्न प्रकार उल्लिखित किया :

> (1) यह कि वह आदेश जो पक्षकारों के अधिकारों को निर्धारित नहीं करता है बल्कि वाद या विचारण के केवल एक पहलू को निर्धारित करता है, एक अंतरिम आदेश है;
>
> (2) यह कि अंतर्वर्ती आदेश, अंतिम आदेश से भिन्न अवधारित किया जाएगा । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि कोई आदेश अंतिम आदेश नहीं है, तो यह एक अंतर्वर्ती आदेश होगा ।”

19. अंतर्वर्ती आदेश से संबंधित माननीय उच्चतम न्यायालय के अनेक विनिश्चयों का परिशीलन करने के पश्चात् इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने **सुनील हंसराज गुप्ता** (उपरोक्त) वाले मामले में निम्न अभिनिर्धारित किया :–

> “उच्चतम न्यायालय के अनेक विनिश्चयों का पुनर्विलोकन करने पर हमारा यह निष्कर्ष है कि अंतर्वर्ती आदेश का मुख्य गुण यह है कि इस आदेश के आधार पर वाद के विनिश्चित किए जाने से संबंधित मात्र किसी बिन्दु या समवर्ती ईप्सित मुद्दों को तय करना होता है न कि अंतिम विनिश्चय या निर्णय देना ।”

20. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि **सुनील हंसराज गुप्ता** (उपरोक्त) वाले मामले में अंतरिम भरणपोषण से संबंधित आदेश किया गया था जिसे अंतर्वर्ती पाया गया, अत: कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19(1) के अधीन चलने योग्य नहीं है ।

21. इसी प्रकार **श्रीमती अमीशी मिलन होनावर** (उपरोक्त) वाले मामले में किया गया विनिश्चय उस अंतरिम व्यादेश से संबंधित था जिसके अनुसार पत्नी को कुटुंब न्यायालय के समक्ष लंबित विवाह-विच्छेद की कार्रवाईयों के दौरान यह आदेश दिया गया था कि वह प्रत्यर्थी-पति और उसके परिजनों को फ्लैट सं. बी-13 में जाने, उसका प्रयोग और उपयोग करने से न रोके । इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने उपरोक्त के संबंध में यह अभिनिर्धारित किया कि आक्षेपित आदेश कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान पारित किया गया है और मुख्य कार्यवाही के निपटारे के पश्चात् इसे तब तक प्रवृत्त नहीं किया जा

सकता है जब तक कि कुटुंब न्यायालय द्वारा मुख्य कार्यवाहियों के निपटारे के समय इसे विशिष्ट रूप से संरक्षित न कर दिया जाए । ऐसा होने पर आक्षेपित आदेश अंतर्वर्ती आदेश बन जाता है, अत: यह कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19(1) के अधीन अपीलनीय नहीं है ।

22. वर्तमान मामले के तथ्यों पर विचार करते हुए अकाट्य रूप से यह कहा जा सकता है कि प्रत्यर्थी-पति के कहने पर दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान ऊपर निर्दिष्ट अनेक आवेदनों को लेकर आक्षेपित आदेश पारित किए गए हैं । यह अर्जी तारीख 16 दिसंबर, 2016 को कुटुंब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश द्वारा खारिज की गई । स्वीकृतत: आक्षेपित आदेशों को दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की कार्यवाही के बने रहने के दौरान इस मामले में के अपीलार्थी-पत्नी द्वारा कभी-भी चुनौती नहीं दी गई ।

23. अब हमें **वी. सी. शुक्ला** (उपरोक्त) वाले मामले में उल्लिखित चार भिन्न-भिन्न कसौटियों पर विचार करेंगे । आक्षेपित आदेश के आधार पर यदि मुख्य मुद्दे, जो दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन से संबंधित है, को किसी भी प्रकार से विनिश्चित नहीं किया जा सकता । यदि आक्षेपित आदेशों को चुनौती दी गई होती और मुख्य कार्यवाही के निपटारे के पूर्व ही चुनौती दी गई होती या आदेशों को उलट दिया गया होता, तब भी पक्षकारों के बीच विवाद बना ही रहता । संक्षेप में यह कहा जा सकता है यदि इन आवेदनों को कुटुंब न्यायालय द्वारा मंजूर किया जाता तब प्रत्यर्थी-पति द्वारा संस्थित की गई कार्यवाही की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए हमारे मतानुसार कार्यवाही का निपटारा नहीं हो सकता था ।

24. **श्रीमती सुखरानी (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित विनिश्चयाधार वर्तमान मामले को लागू नहीं होगा क्योंकि उक्त मामले में विभाजन के वाद के लंबित रहने के दौरान मध्यस्थों के समक्ष निर्देश फाइल किया गया और मध्यस्थों ने अधिनिर्णय पारित किया जिसमें वादी को कतिपय राशि का भुगतान किए जाने का निदेश किया ताकि दोनों शाखाओं के शेयरों को समतुल्य किया जा सके । विचारण न्यायालय ने यह अधिनिर्णय अपास्त कर दिया । यहां तक कि वादी द्वारा फाइल की गई अपील भी उच्च

न्यायालय द्वारा खारिज कर दी गई । वादी ने इस मामले में उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल न करके विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत वाद की कार्यवाही को ही आगे बढ़ाया । इस तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि पक्षकार उच्चतम न्यायालय के समक्ष उस आदेश के विरुद्ध अपील प्रस्तुत कर सकते हैं जो उच्च न्यायालय द्वारा पूर्ववर्ती प्रक्रम पर वाद में उस समय पारित किया गया था जब मध्यस्थ द्वारा किया गया अधिनिर्णय अपास्त कर दिया गया था वाद को विचारण के लिए भेज दिया गया था ।

25. सर्वप्रथम हम यह कहना चाहेंगे कि उपरोक्त मामला कुटुंब न्यायालय अधिनियम के उपबंधों के अधीन नहीं आता है बल्कि यह तो संपत्ति के बंटवारे और हिस्से पर अलग से कब्ज़ा रखने का मामला था । दूसरी बात यह है कि उसमें उल्लिखित अधिनिर्णय वाद की विषयवस्तु के लिए अंतर्निहित था और इसलिए अपील न्यायालय के समक्ष इसे फिर से उठाया जा सकता था । उक्त निर्णय इस मामले के तथ्यों पर दूर-दूर तक लागू नहीं होता है ।

26. हमारी यह भी राय है कि **राहुल साईनाथ पटकर** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित विनिश्चयाधार का लाभ अपीलार्थी-पत्नी को उपलब्ध नहीं है, इस मामले में, वादियों ने घोषणा और व्यादेश को फाइल किया था । वादियों का यह पक्षकथन था कि उनके पास पिछले 29 वर्षों से वाद परिसर का कब्जा है जो या तो स्वत: या उनके पूर्वाधिकारी के माध्यम से प्राप्त हुआ है और यह अभिकथन किया गया है कि प्रतिवादियों ने वाद संपत्ति में अतिचार किया था । प्रतिवादियों ने वाद का विरोध किया था और साथ ही प्रतिवादियों के कब्जे से वाद संपत्ति और उससे संबंधित सभी फायदे वसूल करने के लिए प्रतिदावा भी फाइल किया है । इसके पश्चात् प्रतिवादियों ने एक आवेदन सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में “संहिता” कहा गया है) के आदेश 7, नियम 11(क) और/या (घ) के अधीन वाद खारिज किए जाने हेतु फाइल किया ।

27. इस मामले में यह दलील दी गई कि वादियों द्वारा फाइल किया गया वाद केवल इस घोषणा के लिए प्रस्तुत किया गया था कि

वाद में की गई प्रार्थनाएं अंतरिम अनुतोष की प्रकृति की हैं और आगे और अनुतोष पाने के लिए कोई प्रार्थना नहीं की गई जिससे पता चलता है कि यह वाद केवल घोषणा के लिए ही फाइल किया गया था । प्रतिवादियों ने आगे यह दलील दी है कि वादियों के लिए अतिरिक्त अनुतोष के माध्यम से स्थायी व्यादेश के लिए ईप्सा करना आवश्यक था इसलिए उन्होंने इसकी मांग की है । चूंकि उन्होंने ऐसे अनुतोष की ईप्सा नहीं की थी जो उपलब्ध था और वह उनको मंजूर नहीं किया जा सका विशेषकर ऐसी स्थिति में जब अनुतोष परिसीमा विधि के अधीन वर्जित हो, इसलिए वाद चलने योग्य नहीं था ।

28. इस मामले में के प्रतिवादियों ने उक्त आवेदन का उत्तर दिया और उसी दिन वादपत्र में संशोधन किए जाने के लिए एक अन्य आवेदन फाइल किया जिसमें यह प्रतिवाद किया कि प्रार्थना के खंड (ख) में शाश्वत् व्यादेश के अनुतोष पाने की ईप्सा की गई थी किंतु टंकण की त्रुटि होने के कारण इसके स्थान पर अस्थायी व्यादेश टंकित कर दिया गया । अत: वादियों ने प्रार्थना के खंड (ख) में टंकित “अस्थायी” शब्द को “शाश्वत्” शब्द से प्रतिस्थापित किए जाने की ईप्सा की और वादियों के अनुसार यह त्रुटि प्रत्यक्ष और स्पष्ट थी । तथापि, विद्वान् विचारण न्यायालय ने वादियों द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को स्वीकार नहीं किया और उनके द्वारा संशोधन हेतु फाइल किए गए आवेदन को खारिज कर दिया और वाद के खारिज किए जाने हेतु किया गया आवेदन मंजूर कर दिया ।

29. इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया है कि आक्षेपित आदेश दो भाग में पारित किया गया था । वाद खारिज करने वाला आदेश पूरी तरह उस आदेश पर निर्भर था जिसके द्वारा संशोधन आवेदन खारिज किया गया था । इस न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि इस मामले में यह स्पष्ट किया गया है कि प्रार्थना के खंड (ख) में “स्थायी” के स्थान पर “अस्थायी” शब्द लिखने में वादी ने टंकण संबंधी या लिपिकीय भूल को किस प्रकार ठीक किया है । इस न्यायालय ने यह भी व्यक्त किया है कि कोई भी घोषणा और अस्थायी व्यादेश का वाद फाइल नहीं करता है और जहां तक सामान्य

ज्ञान की बात है वाद घोषणा और स्थायी व्यादेश के लिए ही फाइल किए जाते हैं । वादियों ने भी व्यादेश की प्रार्थना को ही महत्व दिया है । ऐसी स्थिति में, विचारण न्यायालय को संशोधन के लिए की गई प्रार्थना स्वीकार करनी चाहिए थी और उसी के आलोक में वाद खारिज किए जाने हेतु प्रतिवादियों का आवेदन खारिज करना चाहिए था । परिणामस्वरूप इस न्यायालय ने अपील मंजूर की और साथ ही संशोधन के लिए फाइल किया गया आवेदन भी मंजूर किया और वाद खारिज किए जाने हेतु फाइल किया गया आवेदन खारिज किया ।

30. उपरोक्त चर्चा से यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट हो जाता है कि घोषणा और व्यादेश के वाद के लिए कार्यवाही आरंभ की गई थी । इसके अतिरिक्त वाद का खारिज किया जाना प्रस्तावित संशोधन पर आधारित था अर्थात् प्रस्तावित संशोधन और वाद खारिज किए जाने के बीच सीधा संबंध था जैसाकि प्रतिवादियों द्वारा ईप्सित है । वर्तमान मामले में हमने पहले ही कार्यवाही और अपीलार्थी-पति द्वारा फाइल किए गए अनेक आवेदनों की प्रकृति को इंगित किया है । अपीलार्थी-पत्नी **राहुल साही नाथ पाटकर** (उपरोक्त) वाले मामले में के विनिश्चयाधार से कोई लाभ नहीं ले सकती ।

31. जहां तक अपीलार्थी-पत्नी की भरणपोषण संबंधी प्रार्थना के खारिज किए जाने का संबंध है, हमें प्रदर्श-25 की विधिमान्यता और पोषणीयता पर अधिनियम की धारा 28 के साथ पठित धारा 24 के उपबंधों के परिप्रेक्ष्य में विचार करना चाहिए ।

32. धारा 28 निम्न प्रकार है :–

> "28. **डिक्रियों और आदेशों की अपीलें** – (1) इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा दी गई सभी डिक्रियां, उपधारा (3) के उपबंधों के अधीन रहते हुए उसी प्रकार अपीलनीय होंगी जैसे उस न्यायालय द्वारा अपने आरंभिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में दी गई डिक्री अपीलीय होती है और ऐसी हर अपील उस न्यायालय में होगी जिसमें उस न्यायालय द्वारा अपनी आरंभिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में किए गए विनिश्चयों की अपीलें सामान्यत: होती हैं ।

(2) धारा 25 या धारा 26 के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा किए गए आदेश उपधारा (3) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, तभी अपीलनीय होंगे जब वे अंतरिम आदेश न हों और ऐसी हर अपील उस न्यायालय में होगी जिसमें उस न्यायालय द्वारा अपनी आरंभिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में किए गए विनिश्चयों की अपीलें सामान्यत: होती हैं ।

(3) केवल खर्चे के विषय में कोई अपील इस धारा के अधीन नहीं होगी ।

(4) इस धारा के अधीन प्रत्येक अपील डिक्री या आदेश की तारीख से [नब्बे दिन की कालावधि] के भीतर की जाएगी ।"

33. जैसा कि यहां ऊपर देखा गया है, वादाधीन भरणपोषण के ख़ारिज किए जाने का आक्षेपित आदेश अधिनियम की धारा 24 के अधीन किया गया है । अधिनियम की धारा 28 की उपधारा (2) के अधीन यह स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है कि अधिनियम की धारा 24 के अधीन पारित आदेश के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जाएगी । केवल अधिनियम की धारा 25 या 26 के अधीन पारित आदेश को, जो अंतर्वर्ती आदेश नहीं है, उपधारा (2) के अधीन चुनौती दी जा सकती है ।

34. उपरोक्त से यह उद्भूत होता है कि, अधिनियम की धारा 24, 25 या 26 के अधीन पारित अंतरिम आदेशों के विरुद्ध, धारा 28 की उपधारा (2) के अधीन उच्च न्यायालय में कोई अपील नहीं की जाएगी । इस उपधारा के अधीन धारा 24 के संदर्भ का लोप जानबूझकर किया गया है और चूंकि यह एक महत्वपूर्ण पहलू है इसलिए यह माना जाना चाहिए कि विधानमंडल स्पष्ट रूप से अधिनियम की धारा 24 के अधीन पारित किसी भी आदेश के विरुद्ध अपील पर रोक लगाना चाहता था ।

35. अब हम अपीलार्थी-पत्नी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई इस दलील की वैधता पर विचार करेंगे कि संहिता की धारा 105 और आदेश 41, नियम 33 के अधीन वह वर्तमान अपील फाइल करने का हकदार है ।

36. अपीलार्थी-पत्नी के विद्वान् काउंसेल के अनुसार, धारा 105 के

अधीन उन्हें अपील के उस ज्ञापन में आपत्तियों के आधार पर मामले के निर्णय को प्रभावित करने वाले किसी भी आदेश की त्रुटियों, दोषों और अनियमितताओं को चुनौती देने का अधिकार है जो आक्षेपित आदेशों में स्पष्ट रूप से इंगित होती हैं ।

37. धारा 105 निम्न प्रकार है :-

> "धारा 105. अन्य आदेश – (1) अभिव्यक्त रूप से अन्यथा उपबंधित के सिवाय किसी न्यायालय द्वारा अपनी आरंभिक या अपीली अधिकारिता के प्रयोग में किए गए किसी भी आदेश की कोई भी अपील नहीं होगी, किंतु जहां डिक्री की अपील की जाती है वहां किसी आदेश में की ऐसी गलती, त्रुटि या अनियमितता, जिससे मामले के विनिश्चय पर प्रभाव पड़ता है, अपील ज्ञापन में आक्षेप के आधार के रूप में उपवर्णित की जा सकेगी ।
>
> (2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी जहां प्रतिप्रेषण के ऐसे आदेश से, जिसकी अपील होती है, व्यथित कोई पक्षकार अपील नहीं करता है वहां वह उसके पश्चात् उसकी शुद्धता पर विवाद करने से प्रवारित रहेगा ।"

38. उपधारा (1) के प्रथम भाग के अधीन यह उपबंध किया गया है कि किसी भी आदेश के विरुद्ध कोई अपील तब तक नहीं की जाएगी जब तक की संहिता द्वारा स्पष्ट रूप से ऐसा अधिकार न दिया गया हो । किंतु जहां अंतर्वर्ती आदेश अपीलनीय होता है वहां वह पक्षकार, जिसके विरुद्ध आदेश किया गया है, इस आदेश के विरुद्ध तुरंत अपील करने के लिए बाध्य है और द्वितीय भाग के अधीन जब वह अंतिम विनिश्चय के पश्चात् डिक्री के विरुद्ध अपील करता है तब वह मामले के विनिश्चय को प्रभावित करने वाली कोई भी त्रुटि, खामी या अनियमितता को अपील में अक्षय करने का आधार बना सकता है । उपधारा (1) में उल्लिखित "किसी भी आदेश में" शब्दों से यह उपदर्शित होता है कि अपीलनीय आदेश के मामले में भी, बशर्ते कि इससे मामले का विनिश्चय प्रभावित होता हो, या तो सीधे अपील फाइल की जा सकती है या अंतिम डिक्री के विरुद्ध अपील में चुनौती दी जा सकती है सिवाय उन मामलों में जिनमें

रिमांड के अपीलनीय आदेश किए जाते हैं । उपधारा (1) के परवर्ती भाग का यह अर्थ है कि यद्यपि ऐसा हो सकता है कि अंतर्वर्ती आदेश अपीलनीय न हो, फिर भी उसकी विधिकता और शुद्धता पर अंतिम डिक्री के विरुद्ध अपील में प्रश्न उठाया जा सकता है और चुनौती दी जा सकती है ।

39. हमारे समक्ष यहां एक विशेष स्थिति है । हम पहले ही उपदर्शित कर चुके हैं और अपीलार्थी-पत्नी के शब्दों में यह स्वीकृत स्थिति है, यदि हम ऐसा कहें, कि उसका मामला पूरी तरह से कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 के अधीन आता है । हमने पूर्वगामी पैराओं में पहले ही यह स्पष्ट किया है कि आक्षेपित आदेश किस प्रकार अंतर्वर्ती आदेश हैं और इस प्रकार कुटुंब न्यायालय की धारा 19 की परिधि और विस्तार के बाहर हैं । इन परिस्थितियों में हमारा यह निष्कर्ष है कि संहिता की धारा 105 की कोई भी प्रयोज्यता और उपयोगिता नहीं है ।

40. हम थोड़ी देर के लिए यह उपधारणा कर लेते हैं कि धारा 105 अपीलार्थी-पत्नी के लिए सहायक है । फिर भी यह जानना महत्वपूर्ण है कि इस धारा के आवश्यक संघटकों का समाधान हुआ है या नहीं । पक्षकार के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अपीलनीय या अन्यथा आदेश को चुनौती दे किंतु वह उस स्थिति में अवश्य चुनौती देगा, परंतु यह तब जबकि उससे वह आदेश, मामले का विनिश्चय अंतिम डिक्री को चुनौती दिए जाने के समय प्रभावित हुआ हो । वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी-पति ने ही दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए फाइल किए गए मामले के खारिज किए जाने को चुनौती दी है । इस मामले में की अपीलार्थी-पत्नी पर विनिश्चय के खारिज किए जाने से कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा है बल्कि उक्त खारिजी पत्नी के पक्ष में जाती है ।

41. **श्री रामो बर्मन और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में विचार के लिए यह प्रश्न आता है कि क्या पक्षकार विचारण न्यायालय की डिक्री के विरुद्ध अपील में अन्य विवाद्यकों के साथ प्राथमिक विवाद्यक पर विचारण न्यायालय के विनिश्चय को चुनौती देने के लिए स्वतंत्र है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि संहिता की धारा

105 के उपबंधों को दृष्टिगत करते हुए यह कोई बड़ा प्रश्न नहीं है । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि इस उपबंध के अधीन यह स्पष्ट किया गया है कि डिक्री के विरुद्ध की गई अपील में पक्षकार मामले के अन्य मुद्दों पर किए गए विनिश्चय के साथ-साथ प्राथमिक मुद्दों पर डिक्री को चुनौती देने के लिए स्वतंत्र हैं । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि प्राथमिक विवाद्यक पर विनिश्चय को अलग से चुनौती देना आवश्यक नहीं है और पक्षकार वाद में अंतिम विनिश्चय आने तक प्रतीक्षा कर सकते हैं और यदि कोई पक्षकार व्यथित होता है तब वह अपील फाइल कर सकता है । इस अपील में, पक्षकार विचारण न्यायालय के विनिश्चय को प्राथमिक विवाद्यक पर चुनौती ठीक उसी प्रकार दे सकता है जिस प्रकार अन्य किसी विवाद्यक से संबंधित विनिश्चय को चुनौती दी जाती ।

42. उपरोक्त मामले के तथ्य भी पूरी तरह भिन्न हैं । वर्तमान मामले में, जिस पर हम विचार कर रहे हैं, ऐसी कोई परिस्थिति नहीं है जिसमें एक प्राथमिक विवाद्यक कुटुंब न्यायालय के विद्वान् न्यायाधीश द्वारा विरचित किया गया हो । अतः, हमारा यह निष्कर्ष है कि उपरोक्त विनिश्चय जिसका अवलम्ब प्रत्यर्थी-पति द्वारा लिया गया है, उसके लिए किसी भी प्रकार से लाभकारी नहीं है ।

43. अपीलार्थी-पत्नी के विद्वान् काउंसेल ने **सत्यध्यान घोषाल और अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले का भी अवलंब लिया है और विशेषकर उसके पैरा 16 को निर्दिष्ट किया है जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा यह व्यक्त किया गया है कि अंतर्वर्ती आदेश जिसके विरुद्ध या तो इस कारण से अपील नहीं की गई कि कोई अपील बनती नहीं थी या बनती थी मगर फाइल नहीं की गई तब ऐसी स्थिति में अंतर्वर्ती आदेश को अंतिम डिक्री या आदेश के विरुद्ध की गई अपील में चुनौती दी जा सकती थी ।

44. हमने निर्णय का परिशीलन किया है । इसमें यह अधिकथित किया गया है कि अंतर्वर्ती आदेश वह आदेश है जिससे कार्यवाही का अंत न हुआ हो और जिसके विरुद्ध अपील या तो इस कारण से न की गई हो कि कोई अपील बनती नहीं है या इस कारण से कि अपील बनती तो है

मगर सुनवाई के लिए स्वीकार नहीं की गई, ऐसे आदेश को अंतिम डिक्री या आदेश के विरुद्ध की गई अपील में चुनौती दी जा सकती है । यह मत व्यक्त किया गया है कि ऐसा अंतर्वर्ती निर्णय, जो डिक्री का बल रखता है, अन्य अंतर्वर्ती निर्णयों से अलग रखा जाना चाहिए जो डिक्री या अंतिम आदेश द्‌वारा पक्षकारों के बीच विवाद के विनिश्चय की ओर अग्रसर होते हैं । ऐसी स्थिति में कोलकाता किराएदारी अधिनियम, 1949 की धारा 28 की प्रयोज्यता के प्रश्न को अंतर्वर्ती प्रकृति का माना गया जो पश्चात्वर्ती श्रेणी में आता है । कुल मिलाकर हम यह कहना चाहेंगे कि धारा 105 की परिधि और विस्तार, जिसे हमने स्पष्ट किया है, को तथा साथ ही विनिश्चय के उपरोक्त विभेदकारी तथ्यों के आलोक में इस मामले में अपनाया गया विनिश्चयाधार हमारी समझ से बाहर है ।

45. हमारे समक्ष उपलब्ध सामग्री पर विचार करने पर हमारा यह निष्कर्ष है कि धारा 105 की प्रयोज्यता की सीमा का आकलन करना कठिन है । इस प्रकार किसी भी पहलू से देखते हुए अपीलार्थी-पत्नी धारा 105 का लाभ नहीं ले सकती । परिणामतः, हम इस दलील को खारिज करते हैं ।

46. इससे हमारा ध्यान सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 33 की ओर जाता है जो निम्न प्रकार है :-

> "आदेश 41, नियम 33 – **अपील न्यायालय की शक्ति** – अपील न्यायालय की यह शक्ति होगी कि वह कोई ऐसी डिक्री पारित करे या कोई आदेश करे जो पारित की जानी चाहिए या जो किया जाना चाहिए था, और ऐसा या अतिरिक्त या अन्य डिक्री या आदेश पारित करे, जो मामले में अपेक्षित हो, और उस शक्ति का प्रयोग न्यायालय द्‌वारा इस बात के होते हुए भी किया जा सकेगा कि अपील डिक्री के केवल भाग के बारे में है और यह शक्ति सभी प्रत्यर्थियों या पक्षकारों या उनमें से किसी के भी पक्ष में प्रयोग की जा सकेगी, यद्‌यपि ऐसे प्रत्यर्थियों या पक्षकारों ने कोई भी अपील या आक्षेप फाइल न किया हो [और जहां प्रतीपवादों में डिक्रियां हुई हों या जहां एक वाद में दो अधिक डिक्रियां पारित की गई हों वहां यह शक्ति सभी डिक्रियों या उनमें से किसी के बारे में प्रयोग की

जा सकेगी, यद्यपि ऐसी डिक्रियों के विरुद्ध अपील फाइल न की गई हो] :

परंतु अपील न्यायालय द्वारा धारा 35-क के अधीन कोई भी आदेश किसी ऐसे आक्षेप के अनुसरण में नहीं करेगा जिस पर उस न्यायालय ने जिसकी डिक्री की अपील की गई है, ऐसा आदेश नहीं किया है या ऐसा आदेश करने से इनकार किया है ।"

47. उच्चतम न्यायालय द्वारा आदेश 41, नियम 33 की व्याख्या **चौधरी शाहू** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में निम्न प्रकार की गई है :-

"इस नियम का उद्देश्य एक ही वाद में एक ही तरह के प्रश्न पर असंगत और प्रतिरोधी विनिश्चय दिए जाने से रोकना है । इस नियम के अधीन शक्ति सामान्य सिद्धांत के विरुद्ध इस प्रकार है कि कोई पक्षकार अपने विरुद्ध पारित की गई डिक्री के प्रति अपील या प्रति-आक्षेप फाइल किए बिना नहीं रह सकता, इस शक्ति का प्रयोग बड़ी सावधानी और सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए । इस नियम के अधीन यह अधिकार प्रदत्त नहीं किया गया है कि ऐसी डिक्री को दोबारा इस आधार पर आरंभ किया जाए जो पहले ही अंतिम हो चुकी है कि अपील न्यायालय निचले न्यायालय की राय से सहमत नहीं है । आम तौर पर, इस नियम के अधीन प्रदत्त शक्ति केवल उन मामलों को लागू होगी जिनमें अपीलार्थी के पक्ष में किए गए हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप निचले न्यायालय की डिक्री में हस्तक्षेप किया जाना आवश्यक हो ताकि न्याय, समता और अच्छे विवेक के अनुसार पक्षकारों के अधिकारों को समायोजित किया जा सके ।"

48. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित आदेश 41, नियम 33 के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए हम यह दोहराते हैं कि हमारे समक्ष विचार के लिए ऐसी डिक्री नहीं है जिसमें हमारे समक्ष पक्षकारों के अधिकारों के समायोजन के लिए न्याय, समता और अच्छे विवेक के आधार पर हस्तक्षेप करना अपरिहार्य हो । हमें पुनः कहना पड़

[1] ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 98.

रहा है कि दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए पति की ओर से फाइल की गई अर्जी खारिज की गई थी जिसके पश्चात् अब पत्नी को किसी भी प्रकार पुन: समायोजन का अधिकार नहीं है । हमें पुनः कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 19 का ही अवलंब लेना होगा जिसके कार्यक्षेत्र पर आक्षेपित आदेशों की प्रकृति को लेकर विस्तार से विचार किया गया है ।

49. इस प्रकार अभिलेख पर विद्यमान परिस्थितियों से नियम 33 के अधीन प्रदत्त विवेकाधिकार का प्रयोग किया जाना वांछित नहीं है । ऐसी शक्ति का प्रयोग किए जाने के लिए हम उचित नहीं समझते हैं ।

50. ऊपर उल्लिखित कारणों के आधार पर हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि आक्षेपित आदेशों के विरुद्ध कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 19(1) के अधीन वर्तमान अपील चलने योग्य नहीं है ।

51. हम निम्न आदेश करते हैं :-

आदेश

अपील चलने योग्य न होने के कारण खारिज की जाती है और खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

52. यह स्पष्ट किया जाता है कि तारीख 6 दिसंबर, 2019 को सुश्री सीया के पक्ष में पारित किया गया भरणपोषण का आदेश कायम रखा जाता है और वह इस आदेश द्वारा प्रभावित नहीं होगा ।

अपील खारिज की गई ।

अस.

टेक चंद

बनाम

रतु देवी

(2012 की प्रथम अपील सं. 162)

तारीख 23 जुलाई, 2021

न्यायमूर्ति सत्येन वैद्य

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(1)(i-ख) – विवाह-विच्छेद – पत्नी द्वारा अभित्यजन किए जाने का अभिकथन – अर्जीदार यह साबित नहीं कर सका कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने अर्जी फाइल किए जाने के तत्काल पूर्व निरंतर दो वर्ष तक बिना किसी कारण पति के प्रति अभित्यजन किया था, अतः इस आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित नहीं की जा सकती और निचले न्यायालय के निर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 – धारा 3(1)(i-ख) और धारा 9 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 11] – विवाह-विच्छेद कार्यवाही – पूर्वन्याय – पति द्वारा पत्नी के विरुद्ध धारा 9 के अधीन पूर्ववर्ती अर्जी फाइल किया जाना – कुटुम्ब न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया जाना कि पति ने पत्नी के विरुद्ध अभित्यजन किया है, अतः इस आधार पर पति के विरुद्ध पूर्वन्याय का सिद्धांत लागू होगा और उसे पश्चात्वर्ती मामले में विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदत्त नहीं की जा सकती ।

इस मामले में अपीलार्थी विचारण न्यायालय के समक्ष अर्जीदार था । उसने हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 13(1)(i-ख) के अधीन अभित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री की ईप्सा की थी । अर्जीदार द्वारा फाइल की गई अर्जी उस आक्षेपित निर्णय और डिक्री द्वारा खारिज की गई जिसे इस अपील में चुनौती दी गई है । पक्षकारों को सुविधा के लिए इस मामले में उसी प्रकार अर्थात् "अर्जीदार" और

"प्रत्यर्थी" के नाम से ही पुकारा जा रहा है जिस प्रकार विचारण न्यायालय में पुकारा गया था । विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी तारीख 11 सितंबर, 2008 को अर्जीदार द्वारा संस्थित की गई थी । अर्जीदार ने यह प्रकथन किया था कि वर्ष 1990 से प्रत्यर्थी उसकी विधिवत् रूप से विवाहित पत्नी है । इस विवाह-बंधन से एक पुत्र और एक पुत्री ने जन्म लिया जो इस अर्जी के फाइल किए जाने के समय अप्राप्तवय थे । अर्जीदार ने यह भी अभिकथन किया है कि प्रत्यर्थी ने तुच्छ बातों को लेकर अर्जीदार का कहना न मानना उसकी उपेक्षा करना आरंभ कर दिया और यह व्यवहार इतना बढ़ गया कि प्रत्यर्थी अर्जीदार और बच्चों के प्रति पक्षद्रोही हो गई । अर्जीदार द्वारा यह भी प्रतिवाद किया गया कि वह शारीरिक रूप से अशक्त था और इस कारण प्रत्यर्थी उसकी ओर ध्यान नहीं देती थी । अर्जीदार और प्रत्यर्थी के माता-पिता एक ही गांव के निवासी थे । प्रत्यर्थी ने अप्राप्तवय बच्चों के भरणपोषण और कल्याण की परवाह किए बिना लंबे समय से अपने माता-पिता के यहां रहने लगी । अर्जीदार ने प्रत्यर्थी को अपने घर वापस लाने के लिए कई प्रयास किए किंतु प्रत्यर्थी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया । प्रत्यर्थी ने अंतिम रूप से तारीख 30 अगस्त, 2006 से स्वयं को अर्जीदार से अलग कर लिया और उसके पश्चात् से उसने अर्जीदार को पूर्ण रूप से अभित्यजित कर दिया । अर्जीदार ने अर्जी में यह भी उल्लेख किया कि उसने प्रत्यर्थी के विरुद्ध इसके पहले ही अधिनियम की धारा 9 के अधीन मामला फाइल किया था किंतु वह विद्वान् सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन), चच्योट, गौहर, जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश द्वारा तारीख 7 अगस्त, 2008 के निर्णय और डिक्री के अनुसार खारिज कर दिया गया । इसके प्रतिकूल, प्रत्यर्थी ने लिखित उत्तर फाइल करते हुए अर्जी में किए गए सभी प्रकथनों से सामान्य रूप से इनकार किया । इसके अतिरिक्त प्रत्यर्थी ने यह पक्षकथन रखा कि जब तक वह वैवाहिक गृह में रही थी, तब तक उसका जीवन अर्जीदार के कारण दयनीय था और वह सदैव उसके साथ झगड़ा किया करता था । प्रत्यर्थी ने अर्जीदार पर यह आरोप लगाया कि संपूर्ण समस्या का जनक वही है । प्रत्यर्थी के अनुसार अर्जीदार ने कभी उसके साथ जीवनसाथी के रूप में व्यवहार नहीं किया । प्रत्यर्थी के साथ निरंतर दुर्व्यवहार किया जाता था । प्रत्यर्थी द्वारा यह भी दलील दी गई कि फरवरी, 2006 में उसे अर्जीदार ने बिना किसी युक्तियुक्त कारण

वैवाहिक गृह से निकाल दिया था । उसने यह भी अभिकथन किया है कि अर्जीदार ने उसके साथ हाथापाई भी की थी । प्रत्यर्थी के अनुसार उसने ग्राम पंचायत बेला, तहसील चच्योट, जिला मंडी में शिकायत दर्ज कराई थी जिसके पश्चात् पक्षकारों के बीच तारीख 4 अप्रैल, 2006 को समझौता हो गया था और अर्जीदार इस वचन के साथ प्रत्यर्थी को अपने साथ रखने के लिए सहमत हो गया कि वह प्रत्यर्थी को कोई आपत्ति या शिकायत करने का अवसर नहीं देगा । इस सांत्वना और वचन के आधार पर प्रत्यर्थी अर्जीदार के साथ थोड़े-थोड़े समय के लिए रहने लगी । प्रत्यर्थी ने यह भी अभिकथन किया है कि तारीख 8 सितंबर, 2006 को अर्जीदार ने नोटरी पब्लिक के समक्ष एक शपथ-पत्र निष्पादित किया जिसमें उसने प्रत्यर्थी के साथ यातनापूर्ण व्यवहार न करने और जीवन की सभी आवश्यकताओं को पूरा करने का वचन दिया । प्रत्यर्थी के अनुसार तारीख 8 सितंबर, 2006 के तत्काल पश्चात् वह अर्जीदार के साथ लगभग 15 दिन रही किंतु उसके साथ पुन: दुर्व्यवहार किया गया और उसे वैवाहिक गृह छोड़ने पर विवश होना पड़ा । प्रत्यर्थी-पत्नी ने अधिनियम की धारा 9 के अधीन अर्जीदार-पति द्वारा अर्जी फाइल किए जाने और उसमें विनिश्चय दिए जाने का तथ्य स्वीकार किया है । तथापि, उसने यह प्रकथन किया है कि उसने अर्जी का पूरी तरह विरोध किया था और अर्जीदार को इस संबंध में दोषी पाया गया था कि उसने जानबूझकर प्रत्यर्थी के साथ अभित्यजन किया है और उसके साथ मार-पिटाई करने के पश्चात् उसकी उपेक्षा की थी । प्रत्यर्थी ने विशिष्ट रूप से इस बात से इनकार किया है कि उसने तारीख 30 अगस्त, 2006 से अपना वैवाहिक गृह छोड़ दिया था और यह प्रकथन किया है कि वह तारीख 8 सितंबर, 2006 के पश्चात् लगभग 15 दिन अर्जीदार के साथ रही थी और इसके बाद तारीख 25 सितंबर, 2006 को अर्जीदार ने उसे वैवाहिक गृह से निकाल दिया था । संक्षेप में, प्रत्यर्थी ने प्रतिरक्षा में यह अभिवाक किया है कि वह बिना किसी कारण के वैवाहिक गृह से नहीं गई थी । प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए उत्तर में जो प्रकथन किए गए थे उनका खंडन अर्जीदार द्वारा फाइल किए गए प्रतित्युत्तर में नहीं किया गया था । पक्षकारों का विचारण किया गया । अर्जीदार (पी. डब्ल्यू.-1) ने अपने अतिरिक्त श्री इन्दर सिंह (पी. डब्ल्यू.-2) की परीक्षा कराई । दूसरी ओर, प्रत्यर्थी ने अपनी परीक्षा आर. डब्ल्यू.-1 के रूप में

कराई और इसके अतिरिक्त श्री राम सिंह की परीक्षा आर. डब्ल्यू.-2 के रूप में कराई । इसके साथ अर्जीदार ने साक्ष्य में "परिवार" की एक प्रति (प्रदर्श पी. ए.) प्रस्तुत की । प्रत्यर्थी ने भी अभिलेख पर समझौता अभिलेख की फोटो कॉपी (जिसे "एक्स" और "वाई" से चिह्नांकित किया गया है) और विद्वान् सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन), चच्योट, गौहर, जिला मंडी द्वारा तारीख 7 अगस्त, 2008 को पारित आदेश की फोटो कॉपी (जिसे "जेड" के रूप में चिह्नांकित किया गया है) प्रस्तुत की । विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात् अर्जीदार की अर्जी यह अभिनिर्धारित करते हुए खारिज कर दी कि ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे यह पता चलता हो कि प्रत्यर्थी ने वैवाहिक संबंधों को स्थायी रूप से समाप्त करने के आशय से अर्जीदार का घर छोड़ा था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अर्जीदार वे संघटक साबित नहीं किए गए हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सके कि अर्जीदार अभित्यजन के कारण विवाह-विच्छेद का हकदार है । इस आदेश से व्यथित होकर अर्जीदार-पति ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस साक्षी की प्रतिपरीक्षा से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसने जिन महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख सशपथ किया है उन्हें न तो चुनौती दी गई है और न ही वे विरोधाभासी हैं । इन तथ्यों को कोई चुनौती नहीं दी गई है कि ग्राम पंचायत बेला के समक्ष प्रत्यर्थी द्वारा शिकायत की गई थी, इसके पश्चात् समझौता किया गया था, अर्जीदार ने तारीख 8 सितंबर, 2006 को इस संबंध में शपथ-पत्र निष्पादित किया था कि वह प्रत्यर्थी के साथ यातनापूर्ण व्यवहार नहीं करेगा और यह कि प्रत्यर्थी 25 सितंबर, 2006 तक अर्जीदार के साथ रही । राम सिंह (आर. डब्ल्यू.-2) ने भी शपथ-पत्र (प्रदर्श आर. डब्ल्यू.-2/ए) के माध्यम से मुख्य परीक्षा कराई है । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि फरवरी, 2006 में प्रत्यर्थी को अर्जीदार द्वारा बिना किसी कारण परेशान किया गया था और उसे वैवाहिक गृह से निकाल दिया गया । उसने ग्राम पंचायत बेला के समक्ष शिकायत दर्ज कराई । अर्जीदार ने तारीख 8 सितंबर, 2006 को एक शपथ-पत्र निष्पादित किया जिसमें उसने यह उल्लेख किया कि

वह अब प्रत्यर्थी के साथ यातनापूर्ण व्यवहार नहीं करेगा । अर्जीदार अपने शब्दों पर कायम नहीं रह सका और उसने प्रत्यर्थी को वैवाहिक गृह से निकाल दिया गया । राम सिंह ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान यह स्वीकार किया है कि अर्जीदार विकलांग था किंतु इस साक्षी ने यह स्पष्ट किया कि वह हाल ही में विकलांग हुआ था और वह पूर्ववर्ती दिनों में पूरी तरह ठीक था । इस साक्षी ने इस बात से इनकार किया है कि अर्जीदार प्रत्यर्थी की पिटाई नहीं किया करता था । उसने यह स्वीकार किया है कि अर्जीदार के विकलांग होने के पश्चात् उससे मिलने नहीं आई थी । पक्षकारों के मौखिक साक्ष्य से यह उपदर्शित होता है कि अर्जीदार अपने दायित्व का निर्वहन नहीं कर सका है । अर्जीदार को यह साबित करना था कि प्रत्यर्थी ने बिना किसी कारण अर्जी फाइल किए जाने के तत्काल पूर्व निरंतर दो वर्ष तक अर्जीदार को अभित्यजित किया था । अर्जीदार के साधारण से कथन के ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे उसके वृत्तांत की पुष्टि होती हो । यद्यपि पी. डब्ल्यू.-2 ने अर्जीदार (अपीलार्थी) के पक्षकथन का समर्थन किया है किंतु उसके परिसाक्ष्य का अधिक लाभ नहीं लिया जा सकता जिसका यह कारण है कि इस साक्षी ने यह प्रकट नहीं किया है कि उसे अर्जीदार और प्रत्यर्थी के अत्यंत निजी तथ्यों की जानकारी कैसे प्राप्त हुई ? इस स्पष्टीकरण के अभाव में इस साक्षी को बनावटी साक्षी माना जा सकता है । पी. डब्ल्यू.-2 अन्यथा भी विश्वसनीय साक्षी नहीं हैं विशेषकर ऐसी स्थिति में जब उसने यह दावा किया हो कि वह पंचायत का उप प्रधान है और उसने प्रदर्श "एक्स" की अन्तर्वस्तु के प्रति भी अनभिज्ञता दर्शाई है जबकि इस साक्षी ने इस दस्तावेज पर अपने हस्ताक्षर स्वीकार किए हैं । ऊपर कथित कारणों के आधार पर पी. डब्ल्यू.-2 की संपुष्टि अर्जीदार के दावे के साथ नहीं होती है इसलिए उसके कथन पर विश्वास नहीं किया जा सकता । अर्जीदार द्वारा प्रस्तुत किया गया साक्ष्य, जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, सारहीन है । इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा की पहली पंक्ति में यह स्वीकार किया है कि प्रत्यर्थी अर्जीदार 30 अगस्त, 2006 तक प्रसन्नतापूर्वक रही । अर्जीदार के अनुसार, प्रत्यर्थी ने अपने पति को तारीख 30 अगस्त, 2006 को स्थायी रूप से छोड़ दिया था । यदि 30 अगस्त, 2006 तक सब कुछ ठीक चल रहा था तब उस दिन ऐसा क्या

हुआ जिसके कारण प्रत्यर्थी को वैवाहिक गृह छोड़ना पड़ा, इस संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है । अर्जीदार ने ऐसा कथन देकर अपने अभिकथनों, जो उसने प्रत्यर्थी के विरुद्ध अर्जी में किए हैं, को निष्फल कर दिया है । हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 (1)(i-ख) के अधीन यह आज्ञापक है कि अभित्यजन के आधार पर अर्जी फाइल करने के लिए यह आवश्यक है कि अभित्यजन की अवधि कम से कम 2 वर्ष हो । अधिनियम के इस उपबंध की भाषा में विधानमंडल की आज्ञा को लेकर कोई संदेह नहीं है क्योंकि जिस अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है वह इस प्रकार है : "दूसरे पक्षकार ने अर्जी के पेश किए जाने के अव्यवहित पूर्व कम से कम दो वर्ष की निरंतर कालावधि पर अर्जीदार को अभित्यजित रखा है" । अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री और परस्पर विरोधी दलीलों को सुनने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि अर्जीदार ने ऐसा कोई भी संपोषक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है जिससे अभित्यजन की वास्तविक तारीख साबित हो सके । उसने जिस एकमात्र साक्ष्य का अवलंब लिया है वह उसका अपना कथन ही है । दूसरी ओर प्रत्यर्थी ने शपथ-पत्र के माध्यम से दी गई अपनी मुख्य परीक्षा (प्रदर्श आर. डब्ल्यू.-1/ए) में विशिष्ट रूप से उस शपथ-पत्र का उल्लेख किया है जो अर्जीदार ने तारीख 8 सितंबर, 2006 को निष्पादित किया था और उसके पश्चात् प्रत्यर्थी-पत्नी ने अर्जी दर का साहचर्य ग्रहण कर लिया था और वह तारीख 25 सितंबर, 2006 तक लगभग 15 दिन अर्जीदार के साथ रही । अर्जीदार द्वारा प्रत्यर्थी की प्रतिपरीक्षा कराए जाने के दौरान उसके कथन के इस भाग को कतई भी चुनौती नहीं दी गई है, जिसका यह अर्थ हुआ कि अर्जीदार ने प्रत्यर्थी पत्नी के उक्त वृत्तांत को स्वीकार कर लिया है । ऐसा होने पर यह निष्कर्ष कि अर्जीदार ने यह अर्जी दो वर्ष की कानूनी अवधि के पूर्ण होने की प्रतीक्षा किए बिना समयपूर्व ही फाइल कर दी थी, अपरिहार्य हो जाता है । यह अर्जी 11 सितंबर, 2008 को संस्थित की गई थी और जैसाकि ऊपर निष्कर्ष निकाला गया है प्रत्यर्थी ने यह साबित कर दिया है कि वह अर्जीदार के साहचर्य में तारीख 25 सितंबर, 2006 तक रही थी । दो वर्ष की कानूनी अवधि, अर्जी फाइल करने के पश्चात् पूरी नहीं हुई है । इसलिए यह अर्जी चलने योग्य नहीं है और मात्र इसी आधार पर खारिज किए जाने योग्य है । अपीलार्थी-अर्जीदार

ऐसा पक्षकथन प्रस्तुत करने में असफल रहा है जिसके आधार पर आक्षेपित निर्णय और डिक्री में हस्तक्षेप किया जा सके, इसलिए इनकी पुष्टि की जाती है । परिणामतः, यह अपील खर्चों के आदेश के बिना खारिज की जाती है । डिक्री तद्नुसार पारित की जाती है । (23, 24, 28, 29, 35, 37 और 39)

कुल मिलाकर पक्षकारों के बीच यह विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थी के विरुद्ध अधिनियम की धारा 9 के अधीन अर्जीदार द्वारा फाइल की गई अर्जी के अनुसरण में उनके मध्य एक पूर्ववर्ती मुकदमा भी चल रहा था । इस पर भी कोई विवाद नहीं है कि जिस न्यायालय ने अर्जी का न्यायनिर्णयन किया था, उसे ही मामले को विनिश्चित करने की अधिकारिकता थी । उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिनियम की धारा 9 के अधीन अर्जी में जो विवाद्यक अंतर्वलित हैं वही वर्तमान अर्जी में सीधे और सारभूत रूप से विद्यमान हैं, अतः विद्वान् सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन), चच्योट, गौहर, जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश द्वारा हिंदू विवाह अर्जी मामला सं. 1-III/2007 में अभिलिखित निष्कर्ष अंतिमता को पहुंच चुका है और पक्षकारों के बीच पूर्वन्याय बन चुका है । अतः, अर्जीदर यह दावा नहीं कर सकता कि प्रत्यर्थी ने बिना किसी कारण उसका साहचर्य छोड़ा है और यह साबित करना अर्जीदार को अनुतोष दिए जाने के लिए अनिवार्य था । उपरोक्त के आलोक में, साक्ष्य का मूल्यांकन करने पर यह पता चलता है कि आक्षेपित निर्णय में कोई भी कमी नहीं है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार किया है । विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत युक्तियुक्त है और इसमें कोई भी कमी नहीं है । (पैरा 31, 33 और 34)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 प्रथम अपील सं. 162.

2008 की हिन्दू विवाह अर्जी सं. 30 में विद्वान् जिला न्यायाधीश, मंडी, हिमाचल प्रदेश द्वारा तारीख 20 जुलाई, 2011 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री बी. सी. वर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से श्री जी. आर. पलसरा

न्यायमूर्ति सत्येन वैद्य – अपीलार्थी ने इस अपील द्वारा 2008 के हिन्दू विवाह अर्जी सं. 30 (टेक चंद **बनाम** रतु देवी) में विद्वान् जिला न्यायाधीश, मंडी, हिमाचल प्रदेश द्वारा तारीख 20 जुलाई, 2011 को पारित निर्णय और डिक्री को चुनौती दी है ।

2. अपीलार्थी विचारण न्यायालय के समक्ष अर्जीदार था । उसने हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 13(1)(i-ख) के अधीन अभित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री की ईप्सा की थी । अर्जीदार द्वारा फाइल की गई अर्जी उस आक्षेपित निर्णय और डिक्री द्वारा खारिज की गई जिसे इस अपील में चुनौती दी गई है । पक्षकारों को सुविधा के लिए इस मामले में उसी प्रकार अर्थात् "अर्जीदार" और "प्रत्यर्थी" के नाम से ही पुकारा जा रहा है जिस प्रकार विचारण न्यायालय में पुकारा गया था ।

3. विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी तारीख 11 सितंबर, 2008 को अर्जीदार द्वारा संस्थित की गई थी । अर्जीदार ने यह प्रकथन किया था कि वर्ष 1990 से प्रत्यर्थी उसकी विधिवत् रूप से विवाहित पत्नी है । इस विवाह-बंधन से एक पुत्र और एक पुत्री ने जन्म लिया जो इस अर्जी के फाइल किए जाने के समय अप्राप्तवय थे ।

4. अर्जीदार ने यह भी अभिकथन किया है कि प्रत्यर्थी ने तुच्छ बातों को लेकर अर्जीदार का कहना न मानना उसकी उपेक्षा करना आरंभ कर दिया और यह व्यवहार इतना बढ़ गया कि प्रत्यर्थी अर्जीदार और बच्चों के प्रति पक्षद्रोही हो गई । अर्जीदार द्वारा यह भी प्रतिवाद किया गया कि वह शारीरिक रूप से अशक्त था और इस कारण प्रत्यर्थी उसकी ओर ध्यान नहीं देती थी ।

5. अर्जीदार और प्रत्यर्थी के माता-पिता एक ही गांव के निवासी थे । प्रत्यर्थी ने अप्राप्तवय बच्चों के भरणपोषण और कल्याण की परवाह किए बिना लंबे समय से अपने माता-पिता के यहां रहने लगी । अर्जीदार ने प्रत्यर्थी को अपने घर वापस लाने के लिए कई प्रयास किए किंतु प्रत्यर्थी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया । प्रत्यर्थी ने अंतिम रूप से

तारीख 30 अगस्त, 2006 से स्वयं को अर्जीदार से अलग कर लिया और उसके पश्चात् से उसने अर्जीदार को पूर्ण रूप से अभित्यजित कर दिया ।

6. अर्जीदार ने अर्जी में यह भी उल्लेख किया कि उसने प्रत्यर्थी के विरुद्ध इसके पहले ही अधिनियम की धारा 9 के अधीन मामला फाइल किया था किंतु वह विद्वान् सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन), चच्योट, गौहर, जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश द्वारा तारीख 7 अगस्त, 2008 के निर्णय और डिक्री के अनुसार खारिज कर दिया गया ।

7. इसके प्रतिकूल, प्रत्यर्थी ने लिखित उत्तर फाइल करते हुए अर्जी में किए गए सभी प्रकथनों से सामान्य रूप से इनकार किया । इसके अतिरिक्त प्रत्यर्थी ने यह पक्षकथन रखा कि जब तक वह वैवाहिक गृह में रही थी, तब तक उसका जीवन अर्जीदार के कारण दयनीय था और वह सदैव उसके साथ झगड़ा किया करता था । प्रत्यर्थी ने अर्जीदार पर यह आरोप लगाया कि संपूर्ण समस्या का जनक वही है । प्रत्यर्थी के अनुसार अर्जीदार ने कभी उसके साथ जीवनसाथी के रूप में व्यवहार नहीं किया । प्रत्यर्थी के साथ निरंतर दुर्व्यवहार किया जाता था ।

8. प्रत्यर्थी द्वारा यह भी दलील दी गई कि फरवरी, 2006 में उसे अर्जीदार ने बिना किसी युक्तियुक्त कारण वैवाहिक गृह से निकाल दिया था । उसने यह भी अभिकथन किया है कि अर्जीदार ने उसके साथ हाथापाई भी की थी ।

9. प्रत्यर्थी के अनुसार उसने ग्राम पंचायत बेला, तहसील चच्योट, जिला मंडी में शिकायत दर्ज कराई थी जिसके पश्चात् पक्षकारों के बीच तारीख 4 अप्रैल, 2006 को समझौता हो गया था और अर्जीदार इस वचन के साथ प्रत्यर्थी को अपने साथ रखने के लिए सहमत हो गया कि वह प्रत्यर्थी को कोई आपत्ति या शिकायत करने का अवसर नहीं देगा । इस सांत्वना और वचन के आधार पर प्रत्यर्थी अर्जीदार के साथ थोड़े-थोड़े समय के लिए रहने लगी ।

10. प्रत्यर्थी ने यह भी अभिकथन किया है कि तारीख 8 सितंबर, 2006 को अर्जीदार ने नोटरी पब्लिक के समक्ष एक शपथ-पत्र निष्पादित किया जिसमें उसने प्रत्यर्थी के साथ यातनापूर्ण व्यवहार न करने और जीवन की सभी आवश्यकताओं को पूरा करने का वचन दिया । प्रत्यर्थी

के अनुसार तारीख 8 सितंबर, 2006 के तत्काल पश्चात् वह अर्जीदार के साथ लगभग 15 दिन रही किंतु उसके साथ पुन: दुर्व्यवहार किया गया और उसे वैवाहिक गृह छोड़ने पर विवश होना पड़ा ।

11. प्रत्यर्थी-पत्नी ने अधिनियम की धारा 9 के अधीन अर्जीदार-पति द्वारा अर्जी फाइल किए जाने और उसमें विनिश्चय दिए जाने का तथ्य स्वीकार किया है । तथापि, उसने यह प्रकथन किया है कि उसने अर्जी का पूरी तरह विरोध किया था और अर्जीदार को इस संबंध में दोषी पाया गया था कि उसने जानबूझकर प्रत्यर्थी के साथ अभित्यजन किया है और उसके साथ मार-पिटाई करने के पश्चात् उसकी उपेक्षा की थी ।

12. प्रत्यर्थी ने विशिष्ट रूप से इस बात से इनकार किया है कि उसने तारीख 30 अगस्त, 2006 से अपना वैवाहिक गृह छोड़ दिया था और यह प्रकथन किया है कि वह तारीख 8 सितंबर, 2006 के पश्चात् लगभग 15 दिन अर्जीदार के साथ रही थी और इसके बाद तारीख 25 सितंबर, 2006 को अर्जीदार ने उसे वैवाहिक गृह से निकाल दिया था ।

13. संक्षेप में, प्रत्यर्थी ने प्रतिरक्षा में यह अभिवाक् किया है कि वह बिना किसी कारण के वैवाहिक गृह से नहीं गई थी ।

14. प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए उत्तर में जो प्रकथन किए गए थे उनका खंडन अर्जीदार द्वारा फाइल किए गए प्रतित्युत्तर में नहीं किया गया था ।

15. विद्वान् विचारण न्यायालय ने पक्षकारों के अभिवाकों से उद्भूत निम्न विवाद्यक विरचित किए :–

> "(1) क्या प्रत्यर्थी को बिना किसी कारण के अर्जीदार द्वारा अभित्यजित किया गया है ? (विवाद्यक को साबित करने का भार वादी पर)
>
> (2) अनुतोष ।"

16. पक्षकारों का विचारण किया गया । अर्जीदार (पी. डब्ल्यू.-1) ने अपने अतिरिक्त श्री इन्दर सिंह (पी. डब्ल्यू.-2) की परीक्षा कराई । दूसरी ओर, प्रत्यर्थी ने अपनी परीक्षा आर. डब्ल्यू.-1 के रूप में कराई और इसके अतिरिक्त श्री राम सिंह की परीक्षा आर. डब्ल्यू.-2 के रूप में

कराई । इसके साथ अर्जीदार ने साक्ष्य में “परिवार” की एक प्रति (प्रदर्श पी. ए.) प्रस्तुत की । प्रत्यर्थी ने भी अभिलेख पर समझौता अभिलेख की फोटो कॉपी (जिसे “एक्स” और “वाई” से चिह्नांकित किया गया है) और विद्वान् सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन), चच्योट, गौहर, जिला मंडी द्वारा तारीख 7 अगस्त, 2008 को पारित आदेश की फोटो कॉपी (जिसे “जेड” के रूप में चिह्नांकित किया गया है) प्रस्तुत की ।

17. विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्य का परिशीलन करने के पश्चात् अर्जीदार की अर्जी यह अभिनिर्धारित करते हुए खारिज कर दी कि ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे यह पता चलता हो कि प्रत्यर्थी ने वैवाहिक संबंधों को स्थायी रूप से समाप्त करने के आशय से अर्जीदार का घर छोड़ा था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि अर्जीदार वे संघटक साबित नहीं किए गए हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सके कि अर्जीदार अभित्यजन के कारण विवाह-विच्छेद का हकदार है ।

18. अर्जीदार ने मुख्यत: निम्न आधारों पर आक्षेपित निर्णयों को चुनौती दी है :–

(i) विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष पक्षकारों के अभिवाक् और साक्ष्य का गलत पठन और मूल्यांकन किए जाने के कारण दूषित है ।

(ii) प्रत्यर्थी ने ग्राम पंचायत के समक्ष अर्जीदार के विरुद्ध जिस आधार पर शिकायत दर्ज की थी वह उसे साबित नहीं कर सकी है । अभिलेख से यह पता चलता है कि प्रत्यर्थी ने पुनर्मिलन के आशय के बिना अर्जीदार का अभित्यजन किया है ।

19. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना है और अभिलेख का सावधानीपूर्वक परिशीलन किया है ।

20. अर्जीदार ने अपनी मुख्य परीक्षा शपथ-पत्र (प्रदर्श पी. ए.) के माध्यम से कराई है । प्रदर्श पी. ए. और अर्जी की अन्तर्वस्तु सारभूत रूप से एक जैसी है । अर्जीदार ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान इस बात से इनकार किया है कि उसने प्रत्यर्थी-पत्नी के साथ दुर्व्यवहार किया था और प्रत्यर्थी द्वारा उसके विरुद्ध पंचायत के समक्ष तारीख 4 अप्रैल,

2006 को शिकायत दर्ज कराई गई थी । अर्जीदार ने इस बात से भी इनकार किया है कि पंचायत के समक्ष उसके द्वारा कथन किए जाने के पश्चात् मामले का निपटारा किया गया था । अर्जीदार ने इस बात से भी इनकार किया है कि उसने प्रत्यर्थी के विरुद्ध पुलिस के समक्ष मिथ्या अभिकथन किए थे और यह कि उसने तारीख 8 सितंबर, 2006 को मिथ्या शपथ-पत्र निष्पादित किया था । अर्जीदार पति ने इस बात से भी इनकार किया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी तारीख 25 सितंबर, 2006 तक उसके साथ रही थी । उसने यह भी इनकार किया है कि तारीख 30 अगस्त, 2006 को उसने अपनी पत्नी के साथ मारपीट की थी और यह कि उसके कपड़े फाड़े थे । अर्जीदार पति ने इस बात से भी इनकार किया है कि अधिनियम की धारा 9 के अधीन उसके द्वारा फाइल किया गया मामला विद्वान् सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन) चच्योट, गौहर, जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश द्वारा खारिज किया गया था और उसमें यह मत व्यक्त किया गया था कि अर्जीदार दोषी है । अर्जीदार ने यह स्वीकार किया है कि प्रत्यर्थी, उसके और बच्चों के साथ तारीख 30 अगस्त, 2006 तक शांतिपूर्वक रही थी और यह कि अर्जीदार ने प्रत्यर्थी-पत्नी के विरुद्ध अधिनियम की धारा 9 के अधीन मामला फाइल किया था ।

21. इन्दर सिंह (पी. डब्ल्यू.-2) ने भी अपनी मुख्य परीक्षा, शपथ-पत्र के माध्यम से कराई है जिसमें उसने विशिष्ट रूप से यह कथन किया है कि प्रत्यर्थी-पत्नी के साथ 10 वर्ष के शांतिपूर्ण वैवाहिक जीवन के पश्चात् वह तुच्छ मामलों में भी अर्जीदार की अवमानना और उपेक्षा करने लगी । प्रत्यर्थी-पत्नी, अर्जीदार और अप्राप्तवय बच्चों के साथ पक्षद्रोही व्यवहार करने लगी । प्रत्यर्थी बच्चों और अर्जीदार की उपेक्षा करते हुए अंत में तारीख 30 अगस्त, 2006 को अर्जीदार के घर से स्थायी रूप से चली गई । अर्जीदार ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान दस्तावेज (जिसे "एक्स" से चिह्नांकित किया गया है) में "ए" बिन्दू पर अपने हस्ताक्षर स्वीकार किए हैं किंतु उसकी अन्तर्वस्तु के प्रति अनभिज्ञता दर्शाई है । अर्जीदार ने इस बात से इनकार किया है कि वह प्रत्यर्थी-पत्नी के साथ दुर्व्यवहार करता था ।

22. प्रत्यर्थी ने भी शपथ-पत्र (आर. डब्ल्यू.-1/ए) के माध्यम से अपनी मुख्य परीक्षा कराई जिसमें उसने उन्हीं बातों को दोहराया जिनका

उल्लेख उसने अपने लिखित कथन में किया था । प्रत्यर्थी ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान यह स्वीकार किया है कि वह अपने माता-पिता के घर पर 4-5 वर्षों से रह रही थी । उसने यह भी स्वीकार किया है कि उसका पति विकलांग था और वह बैसाखी की सहायता से चलता था । तथापि, उसने यह स्पष्ट किया कि जब उसने अपने माता-पिता के साथ रहना आरंभ किया था तब उस समय उसका पति विकलांग नहीं था । उसने इस बात से इनकार किया है कि उसने अपने पति के विकलांग होने के कारण उसका घर नहीं छोड़ा था और यह कि इसी कारण वह अपने पति के साथ नहीं रहना चाहती थी ।

23. इस साक्षी की प्रतिपरीक्षा से यह स्पष्ट हो जाता है कि उसने जिन महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख सशपथ किया है उन्हें न तो चुनौती दी गई है और न ही वे विरोधाभासी हैं । इन तथ्यों को कोई चुनौती नहीं दी गई है कि ग्राम पंचायत बेला के समक्ष प्रत्यर्थी द्वारा शिकायत की गई थी, इसके पश्चात् समझौता किया गया था, अर्जीदार ने तारीख 8 सितंबर, 2006 को इस संबंध में शपथ-पत्र निष्पादित किया था कि वह प्रत्यर्थी के साथ यातनापूर्ण व्यवहार नहीं करेगा और यह कि प्रत्यर्थी 25 सितंबर, 2006 तक अर्जीदार के साथ रही ।

24. राम सिंह (आर. डब्ल्यू.-2) ने भी शपथ-पत्र (प्रदर्श आर. डब्ल्यू.-2/ए) के माध्यम से मुख्य परीक्षा कराई है । इस साक्षी ने यह कथन किया है कि फरवरी, 2006 में प्रत्यर्थी को अर्जीदार द्वारा बिना किसी कारण परेशान किया गया था और उसे वैवाहिक गृह से निकाल दिया गया । उसने ग्राम पंचायत बेला के समक्ष शिकायत दर्ज कराई । अर्जीदार ने तारीख 8 सितंबर, 2006 को एक शपथ-पत्र निष्पादित किया जिसमें उसने यह उल्लेख किया कि वह अब प्रत्यर्थी के साथ यातनापूर्ण व्यवहार नहीं करेगा । अर्जीदार अपने शब्दों पर कायम नहीं रह सका और उसने प्रत्यर्थी को वैवाहिक गृह से निकाल दिया गया । राम सिंह ने अपनी प्रतिपरीक्षा के दौरान यह स्वीकार किया है कि अर्जीदार विकलांग था किंतु इस साक्षी ने यह स्पष्ट किया कि वह हाल ही में विकलांग हुआ था और वह पूर्ववर्ती दिनों में पूरी तरह ठीक था । इस साक्षी ने इस बात से इनकार किया है कि अर्जीदार प्रत्यर्थी की पिटाई नहीं किया

करता था । उसने यह स्वीकार किया है कि अर्जीदार के विकलांग होने के पश्चात् उससे मिलने नहीं आई थी ।

25. अधिनियम के अधीन अभित्यजन किए जाने के आधार पर विवाह विघटन का मामला साबित करने के लिए कतिपय मूल अधिकारात्मक तथ्यों का साबित किया जाना आवश्यक है । हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(i-ख) निम्न प्रकार है :-

> "**विवाह-विच्छेद** – (1) कोई भी विवाह, वह इस अधिनियम के प्रारंभ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ था चाहे पश्चात्, पति अथवा पत्नी द्वारा उपस्थापित अर्जी पर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा इस आधार पर विघटित किया जा सकेगा कि –
>
> (i-ख) दूसरे पक्षकार ने अर्जी के पेश किए जाने के अव्यवहित पूर्व कम से कम दो वर्ष की निरंतर कालावधि अर्जीदार को अभित्यक्त रखा है ।"

26. अधिनियम की धारा 13(1) के साथ संलग्न स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है :-

> **स्पष्टीकरण** – "इस उपधारा में "अभित्यजन" पद से विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा अर्जीदार का ऐसा अभित्यजन अभिप्रेत है जो युक्तियुक्त कारण के बिना और ऐसे पक्षकार की सम्मति के बिना या इच्छा के विरुद्ध हो और इसके अंतर्गत विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा जानबूझकर अर्जीदार की उपेक्षा करना भी है और इस पद के व्याकरणिक रूप भेदों तथा सजातीय पदों के अर्थ तदनुसार लगाए जाएंगे ।"

27. अपना पक्षकथन साबित करने के लिए अर्जीदार को पहले से यह सिद्ध करना होगा कि प्रत्यर्थी ने अर्जी फाइल करने के तत्काल पूर्व निरंतर दो वर्ष की अवधि के लिए उसका अभित्यजन किया था, दूसरे यह साबित करना होगा कि ऐसा अभित्यजन बिना किसी कारण और सहमति या अर्जीदार की इच्छा के विरुद्ध किया गया था और तीसरे यह भी साबित करना होगा कि प्रत्यर्थी ने जानबूझकर उसके साथ उपेक्षापूर्ण व्यवहार किया है ।

28. पक्षकारों के मौखिक साक्ष्य से यह उपदर्शित होता है कि अर्जीदार अपने दायित्व का निर्वहन नहीं कर सका है । अर्जीदार को यह साबित करना था कि प्रत्यर्थी ने बिना किसी कारण अर्जी फाइल किए जाने के तत्काल पूर्व निरंतर दो वर्ष तक अर्जीदार को अभित्यजित किया था । अर्जीदार के साधारण से कथन के ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिससे उसके वृत्तांत की पुष्टि होती हो । यद्यपि पी. डब्ल्यू.-2 ने अर्जीदार (अपीलार्थी) के पक्षकथन का समर्थन किया है किंतु उसके परिसाक्ष्य का अधिक लाभ नहीं लिया जा सकता जिसका यह कारण है कि इस साक्षी ने यह प्रकट नहीं किया है कि उसे अर्जीदार और प्रत्यर्थी के अत्यंत निजी तथ्यों की जानकारी कैसे प्राप्त हुई ? इस स्पष्टीकरण के अभाव में इस साक्षी को बनावटी साक्षी माना जा सकता है । पी. डब्ल्यू.-2 अन्यथा भी विश्वसनीय साक्षी नहीं हैं विशेषकर ऐसी स्थिति में जब उसने यह दावा किया हो कि वह पंचायत का उप प्रधान है और उसने प्रदर्श "एक्स" की अन्तर्वस्तु के प्रति भी अनभिज्ञता दर्शाई है जबकि इस साक्षी ने इस दस्तावेज पर अपने हस्ताक्षर स्वीकार किए हैं । ऊपर कथित कारणों के आधार पर पी. डब्ल्यू.-2 की संपुष्टि अर्जीदार के दावे के साथ नहीं होती है इसलिए उसके कथन पर विश्वास नहीं किया जा सकता ।

29. अर्जीदार द्वारा प्रस्तुत किया गया साक्ष्य, जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, सारहीन है । इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा की पहली पंक्ति में यह स्वीकार किया है कि प्रत्यर्थी अर्जीदार 30 अगस्त, 2006 तक प्रसन्नतापूर्वक रही । अर्जीदार के अनुसार, प्रत्यर्थी ने अपने पति को तारीख 30 अगस्त, 2006 को स्थायी रूप से छोड़ दिया था । यदि 30 अगस्त, 2006 तक सब कुछ ठीक चल रहा था तब उस दिन ऐसा क्या हुआ जिसके कारण प्रत्यर्थी को वैवाहिक गृह छोड़ना पड़ा, इस संबंध में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है । अर्जीदार ने ऐसा कथन देकर अपने अभिकथनों, जो उसने प्रत्यर्थी के विरुद्ध अर्जी में किए हैं, को निष्फल कर दिया है ।

30. अर्जीदार के विद्वान् काउंसेल ने दृढ़तापूर्वक यह दलील दी है कि प्रत्यार्थी, अर्जीदार द्वारा किए गए दुर्व्यवहार के संबंध में दिए गए अपने प्रकथनों को साबित करने में असफल रही है और इतना ही नहीं

वह ग्राम पंचायत बेला, तहसील चच्योट, जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश के समक्ष की गई शिकायत के अभिकथनों को भी साबित नहीं कर सकी है जिसके परिणाम स्वरूप दोनों पक्षकारों के बीच तारीख 4 अप्रैल 2006 को समझौता किया गया था और उसके बाद तारीख 8 सितंबर, 2006 को अर्जीदार द्वारा शपथ-पत्र निष्पादित किया गया था । अर्जीदार के विद्वान् काउंसेल ने यह ठीक ही कहा है कि प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत किए गए दस्तावेज विधि के अनुसरण में साबित नहीं किए गए हैं किंतु अर्जीदार अपनी इस जिम्मेदारी से नहीं बच सकता कि उसे प्रत्यर्थी की प्रतिपरीक्षा के दौरान उन दस्तावेजों के निष्पादन के संबंध में प्रत्यर्थी के समक्ष प्रस्तुत करके प्रश्न करना चाहिए था विशेषकर ऐसी स्थिति में जब उन्हीं दस्तावेजों के आधार पर प्रत्यर्थी के विरुद्ध अर्जीदार द्वारा दुर्व्यवहार किए जाने का आरोप लगाया गया हो ।

31. कुल मिलाकर पक्षकारों के बीच यह विवाद नहीं है कि प्रत्यर्थी के विरुद्ध अधिनियम की धारा 9 के अधीन अर्जीदार द्वारा फाइल की गई अर्जी के अनुसरण में उनके मध्य एक पूर्ववर्ती मुकदमा भी चल रहा था । इस पर भी कोई विवाद नहीं है कि जिस न्यायालय ने अर्जी का न्यायनिर्णयन किया था, उसे ही मामले को विनिश्चित करने की अधिकारिकता थी । उक्त अर्जी में पारित किए गए निर्णय और डिग्री को "जेड" के रूप में चिह्नांकित किया गया है । किसी भी पक्षकार ने विद्वान् सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन) चच्योट, गौहर, जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश द्वारा हिंदू विवाह अर्जी सं. 1- III/2007 में तारीख 7 अगस्त, 2008 को पारित किए गए निर्णय की फोटोकॉपी की शुद्धता और असलियत पर विवाद नहीं किया है । उक्त निर्णय में विरचित विवाद्यकों का उल्लेख निर्णय के पृष्ठ 3 पर किया गया है जो निम्न प्रकार है :-

1. क्या प्रत्यर्थी ने बिना किसी कारण अर्जीदार का अभिकथित साहचर्य छोड़ा है ? (साबित करने का भार वादी पर है)

2. क्या फाइल की गई अर्जी इस कारण चलने योग्य नहीं है कि अर्जीदार ने प्रत्यर्थी के साथ अभिकथित रूप से दुर्व्यवहार किया है और उसके साथ क्रूरता कारित की है और उसका अभित्यजन किया है ? (साबित करने का भार प्रत्यर्थी पर है)

3. अनुतोष ।

32. उपरोक्त विवाद्यकों के आधार पर विद्वान् सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन) चच्योट, गौहर, जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश ने निर्णय के पैरा 15 में निम्न निष्कर्ष निकला है :-

> "वर्तमान मामले में, अभिलेख पर यह पाया गया है कि अर्जीदार विकलांग है और चलने फिरने में अक्षम है । तथापि, यह एक ऐसा एकमात्र आधार नहीं है जिसके कारण अर्जीदार को दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के अनुतोष का लाभ दिया जा सके और मात्र इस आधार पर न्यायालय दया भाव नहीं रख सकता । अभिलेख पर यह भी पाया गया है कि अर्जीदार, प्रत्यर्थी के साथ दुर्व्यवहार किया करता था जिसके संबंध में प्रत्यर्थी ने पंचायत में शिकायत दर्ज कराई थी और पंचायत ने आपसी सहमति से विवाद का निपटारा किया था । अर्जीदार के आचरण पर मुकदमे की संपूर्ण कार्यवाही के दौरान नजर रखी गई और उसका आचरण संतोषजनक नहीं पाया गया और उसके एकमात्र परिसाक्ष्य के अतिरिक्त उसने अपने अभिवाक् के समर्थन में अन्य कोई भी साक्षी प्रस्तुत नहीं किया है । इसके प्रतिकूल, जैसा कि मेरे द्वारा चर्चा की गई है, प्रत्यर्थी ने यह सिद्ध कर दिया है कि वह अर्जीदार के साथ तब से नहीं रहती है जब से अर्जीदार ने उसके साथ मारपीट और दुर्व्यवहार किया है । इस प्रकार, मेरे उपरोक्त निष्कर्ष के आधार पर, विवाद्यक सं. 1, अर्जीदार के विरुद्ध विनिश्चित किया जाता है और विवाद्यक सं. 2 प्रत्यर्थी के पक्ष में ।"

33. उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिनियम की धारा 9 के अधीन अर्जी में जो विवाद्यक अंतर्वलित हैं वही वर्तमान अर्जी में सीधे और सारभूत रूप से विद्यमान हैं, अतः विद्वान् सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन) , चच्योट, गौहर, जिला मंडी, हिमाचल प्रदेश द्वारा हिंदू विवाह अर्जी मामला सं. 1- III/2007 में अभिलिखित निष्कर्ष अंतिमता को पहुंच चुका है और पक्षकारों के बीच पूर्वन्याय बन चुका है । अतः, अर्जीदर यह दवा नहीं कर सकता की प्रत्यर्थी ने बिना किसी कारण उसका साहचर्य छोड़ा है और यह साबित करना अर्जीदार को अनुतोष दिए जाने के लिए अनिवार्य था ।

34. उपरोक्त के आलोक में, साक्ष्य का मूल्यांकन करने पर यह पता चलता है कि आक्षेपित निर्णय में कोई भी कमी नहीं है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार किया है । विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत युक्तियुक्त है और इसमें कोई भी कमी नहीं है ।

35. हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 (1)(i-ख) के अधीन यह आज्ञापक है कि अभित्यजन के आधार पर अर्जी फाइल करने के लिए यह आवश्यक है कि अभित्यजन की अवधि कम से कम 2 वर्ष हो । अधिनियम के इस उपबंध की भाषा में विधानमंडल की आज्ञा को लेकर कोई संदेह नहीं है क्योंकि जिस अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है वह इस प्रकार है : "दूसरे पक्षकार ने अर्जी के पेश किए जाने के अव्यवहित पूर्व कम से कम दो वर्ष की निरंतर कालावधि पर अर्जीदार को अभित्यजित रखा है" ।

36. यद्यपि वर्तमान मामले में अर्जीदार ने एक विशिष्ट तारीख 30 अगस्त, 2006 अर्थात् जिस दिन प्रत्यर्थी ने पति का घर छोड़ा था, का उल्लेख किया है किंतु प्रत्यर्थी ने विशेष रूप से यह अभिवाक् किया कि वह अर्जीदार के घर में तारीख 8 सितंबर, 2006 से लगभग 25 सितंबर, 2006 तक 15 दिन रही और उसके पश्चात् वैवाहिक गृह छोड़कर चली गई ।

37. अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री और परस्पर विरोधी दलीलों को सुनने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि अर्जीदार ने ऐसा कोई भी संपोषक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है जिससे अभित्यजन की वास्तविक तारीख साबित हो सके । उसने जिस एकमात्र साक्ष्य का अवलंब लिया है वह उसका अपना कथन ही है । दूसरी ओर प्रत्यर्थी ने शपथ-पत्र के माध्यम से दी गई अपनी मुख्य परीक्षा (प्रदर्श आर डब्ल्यू 1/ए) में विशिष्ट रूप से उस शपथ-पत्र का उल्लेख किया है जो अर्जीदार ने तारीख 8 सितंबर, 2006 को निष्पादित किया था और उसके पश्चात् प्रत्यर्थी-पत्नी ने अर्जीदार का साहचर्य ग्रहण कर लिया था और वह तारीख 25 सितंबर, 2006 तक लगभग 15 दिन अर्जीदार के साथ रही । अर्जीदार द्वारा प्रत्यर्थी की प्रतिपरीक्षा कराए जाने के दौरान उसके कथन

के इस भाग को कतई भी चुनौती नहीं दी गई है, जिसका यह अर्थ हुआ कि अर्जीदार ने प्रत्यर्थी पत्नी के उक्त वृत्तांत को स्वीकार कर लिया है । ऐसा होने पर यह निष्कर्ष कि अर्जीदार ने यह अर्जी दो वर्ष की कानूनी अवधि के पूर्ण होने की प्रतीक्षा किए बिना समयपूर्व ही फाइल कर दी थी, अपरिहार्य हो जाता है । यह अर्जी 11 सितंबर, 2008 को संस्थित की गई थी और जैसाकि ऊपर निष्कर्ष निकाला गया है प्रत्यर्थी ने यह साबित कर दिया है कि वह अर्जीदार के साहचर्य में तारीख 25 सितंबर, 2006 तक रही थी। दो वर्ष की कानूनी अवधि, अर्जी फाइल करने के पश्चात् पूरी नहीं हुई है । इसलिए यह अर्जी चलने योग्य नहीं है और मात्र इसी आधार पर खारिज किए जाने योग्य है ।

38. यद्यपि विद्वान् विचारण न्यायालय इस तथ्य पर विचार करने से चूक गया फिर भी यह न्यायालय अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए अभिलेख पर की अवैधता जो पूरी तरह स्पष्ट दिखाई दे रही है, पर विचार करने और विधि के अनुसरण में न्यायनिर्णयन करने से स्वयं को रोक नहीं सकता ।

39. अपीलार्थी-अर्जीदार ऐसा पक्षकथन प्रस्तुत करने में असफल रहा है जिसके आधार पर आक्षेपित निर्णय और डिक्री में हस्तक्षेप किया जा सके, इसलिए इनकी पुष्टि की जाती है । परिणामतः, यह अपील खर्चों के आदेश के बिना खारिज की जाती है । डिक्री तद्नुसार पारित की जाती है ।

40. विद्वान् विचारण न्यायालय का अभिलेख वापस भेजा जाता है । प्रकीर्ण आवेदन, यदि कोई हैं, तद्नुसार खारिज किए जाते हैं ।

अपील खारिज की गई ।

अस.

<u>संसद् के अधिनियम</u>

बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005

(2006 का अधिनियम संख्यांक 4)

[20 जनवरी, 2006]

बालक अधिकारों के संरक्षण के लिए राष्ट्रीय आयोग और राज्य आयोगों और बालकों के विरुद्ध अपराधों या बालक अधिकारों के अतिक्रमण के त्वरित विचारण के लिए बालक न्यायालयों के गठन तथा उससे संबंधित और उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत ने 1990 में हुए संयुक्त राष्ट्र महासभा के शिखर सम्मेलन में भाग लिया था, जिसने बालकों के जीवित रहने, संरक्षण और विकास के संबंध में एक घोषणा को अंगीकार किया ;

और, भारत ने 11 दिसम्बर, 1992 को हुए बालक अधिकार संबंधी अभिसमय (बा.अ.अ.) को भी स्वीकार कर लिया है ;

और बालक अधिकार संबंधी अभिसमय एक अन्तरराष्ट्रीय संधि है जो हस्ताक्षरकर्ता राज्यों के लिए यह अनिवार्य बनाती है कि वे अभिसमय में प्रगणित बालकों के अधिकारों की संरक्षा के लिए सभी आवश्यक उपाय करें ;

और बालकों के अधिकारों के संरक्षण को सुनिश्चित करने के लिए सरकार ने बालकों के लिए हाल ही में जो एक नई पहल आरम्भ की है वह यह है कि उसने राष्ट्रीय बालक चार्टर, 2003 को अंगीकार किया है ;

और मई, 2002 में हुए बालकों के संबंध में संयुक्त राष्ट्र महासभा के विशेष सत्र में "बालकों के लिए उपयुक्त विश्व" नामक निष्कर्ष दस्तावेज को अंगीकृत किया गया था, जिसमें वर्तमान दशक के लिए सदस्य देशों द्‌वारा अपनाए जाने वाले लक्ष्य, उद्देश्य, युक्तियां और क्रियाकलाप अंतर्विष्ट हैं ;

और यह समीचीन है कि इस संबंध में सरकार द्‌वारा अंगीकृत नीतियों, बालक अधिकार संबंधी अभिसमय में विहित मानकों और अन्य

सभी सुसंगत अन्तरराष्ट्रीय लिखतों को कार्यान्वित करने के लिए बालकों से संबंधित विधि अधिनियमित की जाए ;

भारत गणराज्य के छप्पनवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :-

अध्याय 1

प्रारम्भिक

1. **संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारम्भ** – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम बालक अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य को छोड़कर, संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "अध्यक्ष" से, यथास्थिति, आयोग या राज्य आयोग का अध्यक्ष अभिप्रेत है ;

(ख) "बालक अधिकारों" के अन्तर्गत 20 नवम्बर, 1989 को बालक अधिकार संबंधी संयुक्त राष्ट्र अभिसमय में अंगीकृत और 11 दिसम्बर, 1992 को भारत सरकार द्वारा अनुसमर्थित बालकों के अधिकार भी हैं ;

(ग) "आयोग" से धारा 3 के अधीन गठित राष्ट्रीय बालक अधिकार संरक्षण आयोग अभिप्रेत है ;

(घ) "सदस्य" से, यथास्थिति, आयोग या राज्य आयोग का सदस्य अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत अध्यक्ष भी है ;

(ङ) "अधिसूचना" से राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना अभिप्रेत है ;

(च) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(छ) "राज्य आयोग" से धारा 17 के अधीन गठित राज्य बालक अधिकार संरक्षण आयोग अभिप्रेत है ।

अध्याय 2

राष्ट्रीय बालक अधिकार संरक्षण आयोग

3. **राष्ट्रीय बालक अधिकार संरक्षण आयोग का गठन** – (1) केन्द्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम के अधीन एक निकाय का, जो राष्ट्रीय बालक अधिकार संरक्षण आयोग के नाम से ज्ञात होगा, उसे प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने और उसे सौंपे गए कृत्यों का पालन करने के लिए, गठन करेगी ।

(2) आयोग निम्नलिखित सदस्यों से मिलकर बनेगा, अर्थात् :–

(क) एक अध्यक्ष, जो विख्यात व्यक्ति हो और जिसने बालकों के कल्याण के संवर्धन के लिए उत्कृष्ट कार्य किया हो ; और

(ख) केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किए जाने वाले छह सदस्य, जिनमें से कम से कम दो स्त्रियां होंगी और प्रत्येक निम्नलिखित क्षेत्रों में श्रेष्ठता, योग्यता, सत्यनिष्ठा, प्रतिष्ठा और अनुभव रखने वाला व्यक्ति होगा, –

(i) शिक्षा ;

(ii) बाल स्वास्थ्य, देख-रेख, कल्याण या बाल विकास ;

(iii) किशोर न्याय या उपेक्षित या तिरस्कृत बालकों या नि:शक्त बालकों की देख-रेख ;

(iv) बालक श्रम या बालकों के कष्टों का आहरण ;

(v) बालक मनोविज्ञान या समाजशास्त्र ; और

(vi) बालकों से संबंधित विधियां ।

(3) आयोग का कार्यालय दिल्ली में होगा ।

4. **अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति** – केन्द्रीय सरकार अधिसूचना द्वारा, अध्यक्ष और अन्य सदस्यों को नियुक्त करेगी :

परन्तु अध्यक्ष की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा [1][महिला और बाल विकास मंत्रालय या विभाग के प्रभारी मंत्री] की अध्यक्षता में गठित तीन सदस्यों वाली चयन समिति की सिफारिश पर की जाएगी ।

---

[1] 2007 के अधिनियम सं. 4 की धारा 2 द्वारा प्रतिस्थापित ।

5. **अध्यक्ष और सदस्यों की पदावधि और सेवा की शर्तें** – (1) अध्यक्ष और प्रत्येक सदस्य उस रूप में उस तारीख से, जिसको वे अपना पदभार ग्रहण करते हैं, तीन वर्ष की अवधि के लिए पद धारण करेंगे :

परन्तु कोई भी अध्यक्ष या सदस्य दो पदावधियों से अधिक के लिए पद धारण नहीं करेगा :

परन्तु यह और कि कोई अध्यक्ष या कोई अन्य सदस्य –

(क) अध्यक्ष की दशा में, पैंसठ वर्ष की आयु ; और

(ख) सदस्य की दशा में, साठ वर्ष की आयु,

प्राप्त होने के पश्चात् उस हैसियत में अपना पद धारण नहीं करेगा ।

(2) अध्यक्ष या सदस्य, केन्द्रीय सरकार को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा किसी भी समय अपना पद त्याग सकेगा ।

6. **अध्यक्ष और सदस्यों के वेतन और भत्ते** – अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाएं :

परन्तु, यथास्थिति, अध्यक्ष या किसी सदस्य के न तो वेतन और भत्तों में तथा न उसकी सेवा के अन्य निबंधनों और शर्तों में, उसकी नियुक्ति के पश्चात्, उसमें अलाभकारी परिवर्तन किए नहीं जाएंगे ।

7. **पद से हटाया जाना** – (1) उपधारा (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, अध्यक्ष को उसके पद से साबित कदाचार या असमर्थता के आधार पर केन्द्रीय सरकार के आदेश द्वारा हटाया जा सकेगा ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, केन्द्रीय सरकार, आदेश द्वारा अध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य को पद से हटा सकेगी यदि, यथास्थिति, अध्यक्ष या ऐसा अन्य सदस्य –

(क) दिवालिया न्यायनिर्णीत किया जाता है ; या

(ख) अपनी पदावधि के दौरान अपने पद के कर्तव्यों के बाहर किसी सवेतन नियोजन में लगता है ; या

(ग) कार्य करने से इनकार करता है या कार्य करने में असमर्थ हो जाता है ; या

(घ) विकृतचित्त का है और किसी सक्षम न्यायालय द्वारा ऐसा घोषित किया गया है ; या

(ङ) अपने पद का ऐसा दुरुपयोग करता है जिससे उसका पद पर बने रहना लोकहित के लिए हानिकारक हो जाता है ; या

(च) किसी ऐसे अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराया जाता है और कारावास से दंडादिष्ट किया जाता है, जिसमें केन्द्रीय सरकार की राय में, नैतिक अधमता अन्तर्वलित है ; या

(छ) आयोग से अनुपस्थित रहने की अनुमति लिए बिना उसकी तीन क्रमवर्ती बैठकों में अनुपस्थित रहता है ।

(3) इस धारा के अधीन किसी व्यक्ति को तब तक नहीं हटाया जाएगा जब तक कि उस व्यक्ति को उस मामले में सुनवाई का अवसर न दे दिया गया हो ।

8. **अध्यक्ष या सदस्य द्वारा पद रिक्त किया जाना** – (1) यदि, यथास्थिति, अध्यक्ष या कोई सदस्य, –

(क) धारा 7 में वर्णित निरर्हताओं में से किसी के अधीन हो जाता है ; या

(ख) धारा 5 की उपधारा (2) के अधीन अपना त्यागपत्र निविदत्त कर देता है,

तो उस पर उसका पद रिक्त हो जाएगा ।

(2) यदि अध्यक्ष या सदस्य के पद में, उसकी मृत्यु, त्यागपत्र या अन्यथा कारण से आकस्मिक रिक्ति हो जाती है तो ऐसी रिक्ति को धारा 4 के उपबंधों के अनुसार नब्बे दिन के भीतर नई नियुक्ति करके भरा जाएगा और इस प्रकार नियुक्त व्यक्ति वह पद उस पदावधि की उस शेष अवधि के लिए धारण करेगा जिसके लिए, यथास्थिति, वह अध्यक्ष या सदस्य, जिसके स्थान पर वह इस प्रकार नियुक्त किया जाता है, उस पद को धारण करता है ।

9. **रिक्तियों, आदि से आयोग की कार्यवाहियों का अविधिमान्य न होना** – आयोग का कोई कार्य या कार्यवाही, केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं होगी कि –

(क) आयोग में कोई रिक्ति है या उसके गठन में कोई त्रुटि है ; या

(ख) किसी व्यक्ति की अध्यक्ष या सदस्य के रूप में नियुक्ति में कोई त्रुटि है ; या

(ग) आयोग की प्रक्रिया में कोई ऐसी अनियमितता है, जो मामले के गुणागुण पर प्रभाव नहीं डालती है ।

10. **कारबार के संव्यवहार के लिए प्रक्रिया** – (1) आयोग अपने कार्यालय में, ऐसे समय पर जो अध्यक्ष ठीक समझे, नियमित रूप से अधिवेशन करेगा किन्तु अंतिम और अगले अधिवेशन के बीच तीन मास का अंतर नहीं होगा ।

(2) अधिवेशन में सभी विनिश्चय बहुमत द्वारा लिए जाएंगे :

परन्तु बराबर मतों की दशा में, अध्यक्ष, या उसकी अनुपस्थिति में पीठासीन व्यक्ति का द्वितीय या निर्णायक मत होगा और वह उसका प्रयोग करेगा ।

(3) यदि अध्यक्ष किसी कारण से आयोग के अधिवेशन में उपस्थित रहने में असमर्थ है तो उस अधिवेशन में उपस्थित सदस्यों द्वारा अपने में से चुना गया कोई सदस्य पीठासीन होगा ।

(4) आयोग किसी अधिवेशन में अपने कारबार के संव्यवहार के लिए प्रक्रिया के, ऐसे अधिवेशन में गणपूर्ति सहित, ऐसे नियमों का पालन करेगा जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित किए जाएं ।

(5) आयोग के सभी आदेश और विनिश्चय सदस्य-सचिव द्वारा या इस निमित्त सदस्य-सचिव द्वारा सम्यक् रूप से प्राधिकृत आयोग के किसी अन्य अधिकारी द्वारा अधिप्रमाणित किए जाएंगे ।

11. **आयोग के सदस्य-सचिव, अधिकारी और अन्य कर्मचारी** – (1) केन्द्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा, भारत सरकार के संयुक्त-सचिव या अतिरिक्त सचिव की पंक्ति से नीचे के अधिकारी को आयोग के सदस्य-सचिव के रूप में नियुक्त नहीं करेगी और आयोग को ऐसे अन्य अधिकारी और कर्मचारी उपलब्ध कराएगी जो उसके कृत्यों के दक्षतापूर्ण पालन के लिए आवश्यक हों ।

(2) सदस्य-सचिव, आयोग के क्रियाकलापों के उचित प्रशासन और

उसके दिन-प्रतिदिन के प्रबंध के लिए उत्तरदायी होगा तथा वह ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग तथा ऐसे अन्य कर्तव्यों का निर्वहन करेगा जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित किए जाएं ।

(3) आयोग के प्रयोजन के लिए नियुक्त सदस्य-सचिव, अन्य अधिकारियों और कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

12. **वेतन और भत्तों का अनुदानों में से संदाय किया जाना** – अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्तों का तथा प्रशासनिक व्ययों का, जिनके अन्तर्गत धारा 11 में निर्दिष्ट सदस्य-सचिव, अन्य अधिकारियों और कर्मचारियों को संदेय वेतन, भत्ते और पेंशन भी हैं, धारा 27 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट अनुदानों में से संदाय किया जाएगा ।

अध्याय 3

आयोग के कृत्य और शक्तियां

13. **आयोग के कृत्य** – (1) आयोग, निम्नलिखित सभी या किन्हीं कृत्यों का निर्वहन करेगा, –

(क) बालक अधिकारों के संरक्षण के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा या उसके अधीन उपबंधित रक्षोपायों की परीक्षा और पुनर्विलोकन करना तथा उनके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए उपायों की सिफारिश करना ;

(ख) केन्द्रीय सरकार को वार्षिक रूप से और ऐसे अन्य अंतरालों पर, जिन्हें आयोग उचित समझे, उन रक्षोपायों के कार्यकरण पर रिपोर्ट प्रस्तुत करना ;

(ग) बालक अधिकारों के अतिक्रमण की जांच करना और ऐसे मामलों में कार्यवाहियां आरम्भ करने की सिफारिश करना ;

(घ) उन सभी पहलुओं की परीक्षा करना जो आतंकवाद, सांप्रदायिक हिंसा, दंगे, प्राकृतिक आपदा, घरेलू हिंसा, एचआईवी/एड्स, अवैध व्यापार, दुर्व्यवहार, उत्पीड़न और शोषण, अश्लील साहित्य और वेश्यावृत्ति से प्रभावित बालक अधिकारों के उपयोग को रोकते हैं और समुचित उपचारी उपायों की सिफारिश करना ;

(ङ) उन बालकों से, जिन्हें विशेष देख-रेख और संरक्षण की आवश्यकता है, जिनके अन्तर्गत कष्टों से पीड़ित बालक, तिरस्कृत और असुविधाग्रस्त बालक, विधि का उल्लंघन करने वाले बालक, किशोर, कुटुम्ब रहित बालक और कैदियों के बालक भी हैं, संबंधित मामलों की जांच पड़ताल करना और उपयुक्त उपचारी उपायों की सिफारिश करना ;

(च) बालक अधिकारों से संबंधित संधियों और अन्य अन्तरराष्ट्रीय लिखतों का अध्ययन करना और विद्‍यमान नीतियों, कार्यक्रमों और अन्य क्रियाकलापों का कालिक पुनर्विलोकन करना तथा बालकों के सर्वोत्तम हित में उनके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सिफारिशें करना ;

(छ) बालक अधिकारों के क्षेत्र में अनुसंधान करना और उसे अग्रसर करना ;

(ज) समाज के विभिन्न वर्गों के बीच बालक अधिकार संबंधी जानकारी का प्रसार करना और प्रकाशनों, मीडिया, विचार गोष्ठियों और अन्य उपलब्ध साधनों के माध्यम से इन अधिकारों के संरक्षण के लिए उपलब्ध रक्षोपायों के प्रति जागरुकता का संवर्धन करना ;

(झ) केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य सरकार या किसी अन्य प्राधिकारी के नियंत्रणाधीन किसी किशोर अभिरक्षागृह या किसी अन्य निवास स्थान या बालकों के लिए बनाई गई संस्था, जिसके अन्तर्गत किसी सामाजिक संगठन द्‍वारा चलाए जाने वाली संस्था भी है, का निरीक्षण करना या करवाना ; जहां बालकों को उपचार, सुधार या संरक्षण के प्रयोजनों के लिए निरुद्ध किया जाता है या रखा जाता है, निरीक्षण करना या करवाना और किसी उपचारी कार्रवाई के लिए, यदि आवश्यक हो, संबंधित प्राधिकारियों से बातचीत करना ;

(ञ) निम्नलिखित से संबंधित मामलों के परिवादों की जांच करना और इन मामलों पर स्वप्रेरणा से विचार करना –

(i) बालक अधिकारों से वंचन और उनका अतिक्रमण ;

(ii) बालकों के संरक्षण और विकास के लिए उपबंध करने वाली विधियों का अक्रियान्वयन ;

(iii) बालकों की कठिनाइयों को दूर करने और बालकों के कल्याण को सुनिश्चित करने तथा ऐसे बालकों को अनुतोष प्रदान करने के उद्देश्य के लिए नीतिगत विनिश्चयों, मार्गदर्शनों या अनुदेशों का अननुपालन ; या ऐसे विषयों से उद्भूत मुद्दों पर समुचित पदाधिकारियों के साथ बातचीत करना ; और

(ट) ऐसे अन्य कृत्य करना, जो बालकों के अधिकारों के संवर्धन और उपर्युक्त कृत्यों से आनुषंगिक किसी अन्य मामले के लिए आवश्यक समझे जाएं ।

(2) आयोग ऐसे किसी मामले की जांच नहीं करेगा जो किसी राज्य आयोग या तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन सम्यक् रूप से गठित किसी अन्य आयोग के समक्ष लम्बित है ।

14. **जांच से संबंधित शक्तियां** – (1) आयोग को धारा 13 की उपधारा (1) के खण्ड (ञ) में निर्दिष्ट किसी विषय की जांच करते समय और विशिष्टतया निम्नलिखित विषयों के संबंध में वे सभी शक्तियां होंगी, जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन किसी वाद का विचारण करते समय सिविल न्यायालय को होती हैं, अर्थात् :–

(क) किसी व्यक्ति को समन करना और हाजिर कराना तथा शपथ पर उसकी परीक्षा करना ;

(ख) किसी दस्तावेज का प्रकटीकरण और पेश किया जाना ;

(ग) शपथ पत्रों पर साक्ष्य लेना ;

(घ) किसी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रतिलिपि की अध्यपेक्षा करना ; और

(ङ) साक्षियों या दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन निकालना ।

(2) आयोग को किसी मामले को ऐसे मजिस्ट्रेट को भेजने की शक्ति होगी जिसे उसका विचारण करने की अधिकारिता है और वह

मजिस्ट्रेट जिसे कोई ऐसा मामला भेजा जाता है, अभियुक्त के विरुद्ध परिवाद सुनने के लिए इस प्रकार अग्रसर होगा मानो वह मामला दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 346 के अधीन उसको भेजा गया है ।

15. **जांच के पश्चात् कार्रवाई** – आयोग, इस अधिनियम के अधीन की गई किसी जांच के पूरा होने पर, निम्नलिखित कार्रवाई कर सकेगा, अर्थात् :–

(i) जहां जांच से बालक अधिकारों के किसी गंभीर प्रकृति के अतिक्रमण का या तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के उपबंधों का उल्लंघन होना प्रकट होता है वहां, वह सम्बद्ध सरकार या प्राधिकारी को संबंधित व्यक्ति या व्यक्तियों के विरुद्ध अभियोजन के लिए कार्यवाहियां या ऐसी अन्य कार्रवाई जो आयोग ठीक समझे, आरम्भ करने के लिए सिफारिश कर सकेगा ;

(ii) उच्चतम न्यायालय या संबंधित उच्च न्यायालय से ऐसे निदेशों, आदेशों या रिटों के लिए जो वह न्यायालय उचित समझे, अनुरोध कर सकेगा ;

(iii) पीड़ित व्यक्ति या उसके कुटुम्ब के सदस्यों को ऐसे तत्काल अंतरिम सहायता मंजूर करने की, जो आयोग उचित समझे, सम्बद्ध सरकार या प्राधिकारी को सिफारिश कर सकेगा ।

16. **आयोग की वार्षिक और विशेष रिपोर्ट** – (1) आयोग, केन्द्रीय सरकार को और सम्बद्ध राज्य सरकार को वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा और किसी भी समय ऐसे विषय पर जो उसकी राय में इतना अतिआवश्यक या महत्वपूर्ण है कि उसको वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने तक आस्थगित नहीं किया जाना चाहिए, विशेष रिपोर्ट प्रस्तुत कर सकेगा ।

(2) यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या सम्बद्ध राज्य सरकार आयोग की वार्षिक और विशेष रिपोर्टों को आयोग की सिफारिशों पर की गई या किए जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई के ज्ञापन सहित और सिफारिशों की अस्वीकृति के कारणों सहित, यदि कोई हों, यथास्थिति, संसद् या राज्य विधान-मंडल के प्रत्येक सदन के समक्ष ऐसी रिपोर्टों की प्राप्ति की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर रखवाएगी ।

(3) वार्षिक रिपोर्ट ऐसे प्ररूप और रीति में तैयार की जाएगी और उसमें ऐसे ब्यौरे अंतर्विष्ट होंगे जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विहित किए जाएं ।

अध्याय 4

राज्य बालक अधिकार संरक्षण आयोग

17. **राज्य बालक अधिकार संरक्षण आयोग का गठन** – (1) राज्य सरकार, इस अध्याय के अधीन एक निकाय का, राज्य आयोग को प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करने और उसे सौंपे गए कृत्यों का पालन करने के लिए जो .... (राज्य का नाम) बालक अधिकार संरक्षण आयोग के नाम से ज्ञात होगा, गठन कर सकेगी ।

(2) राज्य आयोग निम्नलिखित सदस्यों से मिलकर बनेगा, अर्थात् :–

(क) एक अध्यक्ष, जो विख्यात व्यक्ति हो और जिसने बालकों के कल्याण के संवर्धन के लिए उत्कृष्ट कार्य किया हो ; और

(ख) राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किए जाने वाले छह सदस्य, जिनमें से कम से कम दो स्त्रियां होंगी और प्रत्येक निम्नलिखित क्षेत्रों में श्रेष्ठता, योग्यता, सत्यनिष्ठा, प्रतिष्ठा और अनुभव रखने वाले व्यक्तियों में से –

(i) शिक्षा ;

(ii) बाल स्वास्थ्य, देख-रेख, कल्याण या बाल विकास ;

(iii) किशोर न्याय या उपेक्षित या तिरस्कृत बालकों या नि:शक्त बालकों की देख-रेख ;

(iv) बालक श्रम या बालकों के कष्टों का आहरण ;

(v) बालक मनोविज्ञान या समाजशास्त्र ; और

(vi) बालकों से संबंधित विधियां ।

(3) राज्य आयोग का मुख्यालय ऐसे स्थान पर होगा जो राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट करे ।

18. **अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति** – राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति करेगी :

परन्तु अध्यक्ष की नियुक्ति, राज्य सरकार द्वारा बालकों से संबंधित विभाग के प्रभारी मंत्री की अध्यक्षता में गठित तीन सदस्यों वाली समिति की सिफारिश पर की जाएगी ।

19. **अध्यक्ष और सदस्यों की पदावधि और सेवा की शर्तें** – (1) अध्यक्ष और प्रत्येक सदस्य उस रूप में उस तारीख से, जिसको वे अपना पदभार ग्रहण करते हैं, तीन वर्ष की अवधि के लिए पद धारण करेंगे :

परन्तु कोई भी अध्यक्ष या सदस्य दो पदावधियों से अधिक के लिए पद धारण नहीं करेगा :

परन्तु यह और कि कोई अध्यक्ष या कोई अन्य सदस्य –

(क) अध्यक्ष की दशा में, पैंसठ वर्ष की आयु ; और

(ख) सदस्य की दशा में, साठ वर्ष की आयु,

प्राप्त होने के पश्चात् उस हैसियत में अपना पद धारण नहीं करेगा ।

(2) अध्यक्ष या कोई सदस्य राज्य सरकार को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा किसी भी समय अपना पद त्याग सकेगा ।

20. **अध्यक्ष और सदस्यों के वेतन और भत्ते** – अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाएं :

परन्तु, यथास्थिति, अध्यक्ष या किसी सदस्य के न तो वेतन और भत्तों में तथा न उसकी सेवा के अन्य निबंधनों और शर्तों में, उसकी नियुक्ति के पश्चात्, उसके अलाभकारी परिवर्तन किया जाएगा ।

21. **राज्य आयोग के सचिव, अधिकारी और अन्य कर्मचारी** – (1) राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, राज्य सरकार के सचिव की पंक्ति से नीचे के अधिकारी को राज्य आयोग के सचिव के रूप में नियुक्त नहीं करेगी और राज्य आयोग को ऐसे अन्य अधिकारी और कर्मचारी उपलब्ध कराएगी जो उसके कृत्यों के दक्षतापूर्ण पालन के लिए आवश्यक हों ।

(2) सचिव, राज्य आयोग के क्रियाकलापों के उचित प्रशासन और उसके दिन-प्रतिदिन के प्रबंध के लिए उत्तरदायी होगा तथा वह ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कर्तव्यों का पालन करेगा जो राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाएं ।

(3) राज्य आयोग के प्रयोजन के लिए नियुक्त सचिव, अन्य अधिकारियों और कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते, तथा उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

22. **वेतन और भत्तों का अनुदानों में से संदाय किया जाना –** अध्यक्ष और सदस्यों को संदेय वेतन और भत्तों का तथा प्रशासनिक व्ययों का, जिनके अन्तर्गत धारा 21 में निर्दिष्ट सचिव, अन्य अधिकारियों और कर्मचारियों को संदेय वेतन, भत्ते और पेंशन भी हैं, धारा 28 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट अनुदानों में से संदाय किया जाएगा ।

23. **राज्य आयोग की वार्षिक और विशेष रिपोर्टें –** (1) राज्य आयोग, राज्य सरकार को वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा और किसी भी समय ऐसे विषय पर, जो उसकी राय में इतना अति आवश्यक या महत्वपूर्ण है कि उसको वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने तक आस्थगित नहीं किया जाना चाहिए, विशेष रिपोर्ट प्रस्तुत कर सकेगा ।

(2) राज्य सरकार, उपधारा (1) में निर्दिष्ट सभी रिपोर्टों को राज्य से संबंधित सिफारिशों पर की गई या किए जाने के लिए प्रस्तावित कार्रवाई के स्पष्टीकारक ज्ञापन सहित और ऐसी सिफारिशों में से किसी की अस्वीकृति के कारणों सहित, यदि कोई हो, जहां राज्य विधान-मंडल दो सदनों से मिलकर बनता है वहां प्रत्येक सदन के समक्ष या जहां ऐसा विधान-मंडल एक सदन से मिलकर बनता है वहां उस सदन के समक्ष रखवाएगी ।

(3) वार्षिक रिपोर्ट ऐसे प्ररूप और रीति में तैयार की जाएगी तथा उसमें ऐसे ब्यौरे अंतर्विष्ट होंगे जो राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाएं ।

24. **राष्ट्रीय बालक अधिकार संरक्षण आयोग से संबंधित कतिपय उपबंधों का राज्य आयोगों को लागू होना –** धारा 7, धारा 8, धारा 9, धारा 10, धारा 13 की उपधारा (1) और धारा 14 तथा धारा 15 के उपबंध राज्य आयोग को निम्नलिखित उपांतरणों के अधीन रहते हुए लागू होंगे, और प्रभावी होंगे, अर्थात् :–

(क) "आयोग" के प्रति निर्देशों का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वे "राज्य आयोग" के प्रति निर्देश हैं ;

(ख) "केन्द्र सरकार" के प्रति निर्देशों का यह अर्थ लगाया जाएगा

कि वे "राज्य सरकार" के प्रति निर्देश हैं ; और

(ग) "सदस्य सचिव" के प्रति निर्देशों का यह अर्थ लगाया जाएगा कि वे "सचिव" के प्रति निर्देश हैं ।

अध्याय 5

बालक न्यायालय

25. **बालक न्यायालय** – राज्य सरकार, बालकों के विरुद्ध अपराधों या बालक अधिकारों के अतिक्रमण के अपराधों का त्वरित विचारण करने का उपबंध करने के प्रयोजन के लिए, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति की सहमति से, अधिसूचना द्वारा, उक्त अपराधों का विचारण करने के लिए राज्य में कम-से-कम एक न्यायालय को या प्रत्येक जिले में किसी सेशन न्यायालय को बालक न्यायालय के रूप में विनिर्दिष्ट कर सकेगी :

परन्तु इस धारा की कोई बात तब लागू नहीं होगी, जब तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन ऐसे अपराधों के लिए –

(क) कोई सेशन न्यायालय पहले से ही विशेष न्यायालय के रूप में विनिर्दिष्ट है ; या

(ख) कोई विशेष न्यायालय पहले से ही गठित है ।

26. **विशेष लोक अभियोजक** – राज्य सरकार, प्रत्येक बालक न्यायालय के लिए, अधिसूचना द्वारा, एक लोक अभियोजक विनिर्दिष्ट करेगी या किसी ऐसे अधिवक्ता को, जिसने कम-से-कम सात वर्ष तक अधिवक्ता के रूप में विधि व्यवसाय किया हो, उस न्यायालय में मामलों के संचालन के प्रयोजन के लिए, विशेष लोक अभियोजक के रूप में नियुक्त करेगी ।

अध्याय 6

वित्त, लेखा और संपरीक्षा

27. **केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुदान** – (1) केन्द्रीय सरकार, संसद् द्वारा इस निमित्त विधि द्वारा किए गए सम्यक् विनियोग के पश्चात्, आयोग को अनुदानों के रूप में ऐसी धनराशियों का संदाय करेगी, जो केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उपयोग किए जाने

के लिए, ठीक समझे ।

(2) आयोग, इस अधिनियम के अधीन कृत्यों का पालन करने के लिए ऐसी धनराशियां खर्च कर सकेगा जो वह ठीक समझे और ऐसी राशियां उपधारा (1) में निर्दिष्ट अनुदानों में से संदेय व्यय मानी जाएंगी ।

28. **राज्य सरकारों द्वारा अनुदान** – (1) राज्य सरकार, विधान-मंडल द्वारा इस निमित्त विधि द्वारा किए गए सम्यक् विनियोग के पश्चात् राज्य आयोग को अनुदानों के रूप में ऐसी धनराशियों का संदाय करेगी जो राज्य सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उपयोग किए जाने के लिए ठीक समझे ।

(2) राज्य आयोग, इस अधिनियम के अध्याय 3 के अधीन कृत्यों का पालन करने के लिए ऐसी धनराशियां खर्च कर सकेगा जो वह ठीक समझे और ऐसी राशियां उपधारा (1) में निर्दिष्ट अनुदानों में से संदेय व्यय मानी जाएंगी ।

29. **आयोग के लेखा और संपरीक्षा** – (1) आयोग उचित लेखा और अन्य सुसंगत अभिलेख रखेगा और लेखाओं का वार्षिक विवरण ऐसे प्ररूप में तैयार करेगा जो केन्द्रीय सरकार भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से परामर्श करके विहित करे ।

(2) आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा, नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा ऐसे अंतरालों पर की जाएगी जो उसके द्वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं और ऐसी संपरीक्षा के संबंध में उपगत कोई व्यय आयोग द्वारा नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को संदेय होगा ।

(3) नियंत्रक-महालेखापरीक्षक और इस अधिनियम के अधीन आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति को उस संपरीक्षा के संबंध में वे ही अधिकार और विशेषाधिकार तथा प्राधिकार प्राप्त होंगे जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को साधारणतया सरकारी लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में होते हैं और विशिष्टतया उसे बहियां, लेखे, संबंधित वाउचर तथा अन्य दस्तावेज और कागज-पत्र पेश किए जाने की मांग करने तथा आयोग के किसी भी कार्यालय का निरीक्षण करने का अधिकार होगा ।

(4) आयोग द्वारा केन्द्रीय सरकार को नियंत्रक-महालेखापरीक्षक

द्‌वारा या इस निमित्त उसके द्‌वारा नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति द्‌वारा प्रमाणित, आयोग के लेखे, उन पर संपरीक्षा रिपोर्ट सहित, प्रति वर्ष भेजे जाएंगे और केन्द्रीय सरकार ऐसी संपरीक्षा रिपोर्ट को उसके प्राप्त होने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवाएगी ।

30. **राज्य आयोग के लेखा और संपरीक्षा** – (1) राज्य आयोग, उचित लेखा और अन्य सुसंगत अभिलेख रखेगा और लेखाओं का वार्षिक विवरण, ऐसे प्ररूप में तैयार करेगा जो राज्य सरकार भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक से परामर्श करके विहित करे ।

(2) राज्य आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा, नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्‌वारा ऐसे अंतरालों पर की जाएगी जो उसके द्‌वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं और ऐसी संपरीक्षा के संबंध में उपगत कोई व्यय, राज्य आयोग द्‌वारा नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को संदेय होगा ।

(3) नियंत्रक-महालेखापरीक्षक और इस अधिनियम के अधीन राज्य आयोग के लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में उसके द्‌वारा नियुक्त किसी व्यक्ति को उस संपरीक्षा के संबंध में वे ही अधिकार और विशेषाधिकार तथा प्राधिकार प्राप्त होंगे जो नियंत्रक-महालेखापरीक्षक को साधारणतया सरकारी लेखाओं की संपरीक्षा के संबंध में होते हैं और विशिष्टतया उसे बहियां, लेखे, संबंधित वाउचर तथा अन्य दस्तावेज और कागज-पत्र पेश किए जाने की मांग करने तथा राज्य आयोग के किसी भी कार्यालय का निरीक्षण करने का अधिकार होगा ।

(4) राज्य आयोग द्‌वारा राज्य सरकार को नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्‌वारा या इस निमित्त उसके द्‌वारा नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति द्‌वारा प्रमाणित राज्य आयोग के लेखे, उन पर संपरीक्षा रिपोर्ट सहित प्रति वर्ष भेजे जाएंगे और राज्य सरकार ऐसी संपरीक्षा रिपोर्ट को उसके प्राप्त होने के पश्चात् यथाशीघ्र राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखवाएगी ।

अध्याय 7

प्रकीर्ण

31. **सद्भावपूर्वक कार्रवाई के लिए संरक्षण** – इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए किन्हीं नियमों के अनुसरण में सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के संबंध में अथवा किसी

रिपोर्ट या कागज-पत्र केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, आयोग या राज्य आयोग के प्राधिकार द्वारा या उसके अधीन किसी प्रकाशन के संबंध में कोई भी वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, आयोग, राज्य आयोग या उसके किसी सदस्य अथवा केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, आयोग या राज्य आयोग के निदेशाधीन कार्य करने वाले किसी व्यक्ति के विरुद्ध नहीं होगी ।

32. **अध्यक्ष, सदस्यों और अन्य अधिकारियों का लोक सेवक होना** – आयोग, राज्य आयोग का प्रत्येक सदस्य और इस अधिनियम के अधीन कृत्यों का निर्वहन करने के लिए आयोग या राज्य आयोग में नियुक्त प्रत्येक अधिकारी, भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थान्तर्गत लोक सेवक समझा जाएगा ।

33. **केन्द्रीय सरकार द्वारा निदेश** – (1) आयोग, इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों का निर्वहन करने में राष्ट्रीय प्रयोजनों से संबंधित नीति विषयक प्रश्नों पर ऐसे निदेशों द्वारा मार्गदर्शित होगा, जो उसे केन्द्रीय सरकार द्वारा दिए जाएं ।

(2) यदि केन्द्रीय सरकार और आयोग के बीच इस बारे में कोई विवाद उत्पन्न होता है कि कोई प्रश्न राष्ट्रीय प्रयोजन से संबंधित नीति विषयक प्रश्न है या नहीं, तो उस पर केन्द्रीय सरकार का विनिश्चय अंतिम होगा ।

34. **विवरणियां या जानकारी** – आयोग, केन्द्रीय सरकार को अपने उन क्रियाकलापों के संबंध में ऐसी विवरणियां या अन्य जानकारी प्रस्तुत करेगा जिनकी केन्द्रीय सरकार समय-समय पर अपेक्षा करे ।

35. **केन्द्रीय सरकार की नियम बनाने की शक्ति** – (1) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियमों में, निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबन्ध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की सेवा के निबंधन और शर्तें तथा धारा 6 के अधीन उनके वेतन और भत्ते ;

(ख) आयोग द्वारा धारा 10 की उपधारा (4) के अधीन अधिवेशन में उसके कारबार के संव्यवहार के संबंध में उसके द्वारा अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया ;

(ग) वे शक्तियां और कर्तव्य जिनका प्रयोग और पालन धारा 11 की उपधारा (2) के अधीन आयोग के सदस्य-सचिव द्वारा किया जाएगा ;

(घ) धारा 11 की उपधारा (3) के अधीन आयोग के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों के वेतन और भत्ते तथा सेवा अन्य निबंधन और शर्तें ; और

(ङ) धारा 29 की उपधारा (1) के अधीन आयोग द्वारा तैयार किए जाने वाले लेखा विवरण और अन्य अभिलेख का प्ररूप ।

(3) इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्र के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से पहले उसके अधीन की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

36. **राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति** – (1) राज्य सरकार, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, अधिसूचना द्वारा बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियमों में, निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए, उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) राज्य आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की सेवा के निबंधन और शर्तें, तथा धारा 20 के अधीन उनके वेतन और भत्ते ;

(ख) राज्य आयोग द्वारा धारा 24 के साथ पठित धारा 10 की उपधारा (4) के अधीन बैठक में उसके कारबार के संव्यवहार के संबंध में अनुसरित की जाने वाली प्रक्रिया ;

(ग) वे शक्तियां और कर्तव्य जिनका प्रयोग और पालन धारा 21 की उपधारा (2) के अधीन राज्य आयोग के सचिव द्वारा किया जाएगा ;

(घ) धारा 21 की उपधारा (3) के अधीन राज्य आयोग के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों के वेतन और भत्ते तथा सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें ; और

(ङ) धारा 30 की उपधारा (1) के अधीन राज्य आयोग द्वारा तैयार की जाने वाली लेखा विवरणी और अन्य अभिलेख का प्ररूप ।

(3) इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र राज्य विधान-मंडल के जहां उसके दो सदन हैं, प्रत्येक सदन के समक्ष, या जहां, ऐसे राज्य विधान-मंडल में एक सदन है तो उस सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

37. **कठिनाइयां दूर करने की शक्ति** – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा ऐसे उपबंध कर सकेगी, जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों और जो कठिनाई को दूर करने के लिए आवश्यक प्रतीत होते हों :

परन्तु ऐसा कोई आदेश इस अधिनियम के प्रारम्भ की तारीख से दो वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश, किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण) – डा. एस. सी. खरे – 1996	273	115	29.00
2.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) – विधि साहित्य प्रकाशन – 2000	209	225	57.00
3.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	145.00
4.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–
5.	भारत का सांविधानिक इतिहास - (103वां संशोधन तक) - श्री चन्द्रशेखर मिश्र	340	325	–
6.	भारतीय संविधान के प्रमुख तत्व - डा. प्रद्युम्न कुमार त्रिपाठी	906	750	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. विधि शब्दावली	सातवां संस्करण, 2015	कीमत रु. 375/-
2. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2019	कीमत रु. 1,900/-
3. भारत का संविधान	2021	कीमत रु. 300/-

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

Website : www.lawmin.nic.in

Email : am.vsp-molj@gov.in

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं - **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका** और **उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः सिविल और दांडिक के चयनित महत्वपूर्ण निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को आन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in